लार्ड चेस्टरफील्ड के अपने पुत्रों प्रति व्यवहारिक उपदेश।

बहिर्चित्तता।

बहिर्चित्त मनुष्य बहुधा अति मन्द बुद्धि अथवा ढोंगी होता है, जिस से वह अपने समागमवालों को अप्रिय लगता और सभ्यता की साधारण रीतियों में अपूर्ण होता है। वह सामान्य बातचीत में चित्त नहीं लगाता और स्वप्न में से उठे हुए की नाईं अपनी अगली ही बात निकाल कर चलती हुई बात चीत में बारम्बार बोल उठता है। विचार में //डूबा हुआ दिखलाई देता है परन्तु वास्तव में कोई विचार नहीं करता, अपने दृढ स्नेहियों को भी दृष्टिगोचर होते ही नहीं पहचान सकता और यदि पहचान भी लिया तो उन के साथ इस प्रकार बातचीत करता है कि मानो आप किसी अन्य कार्य्य में फंसा हुआ हो। अपने वस्त्र वा सदा उपयुक्त होनेवाली वस्तुओं का सम्भाल बिल्कुल नहीं करता, वे सदा इधर उधर पडी रहती हैं। ऐसी दशा या तो उस असावधान मन की निशानी है जो एक काल में एक से दूसरा कार्य्य कर ही न सकता हो, या उस ढोंगी मन की जो अपने को किसी आवश्यक या भारी कार्य्य में रुका हुआ प्रगट करता हो। सृष्टि की उत्पत्ति से आज तक सर आइजक्न्यूटन् (१) मिस्टर लोक (२) अथवा अन्य पांच छः ऐसे ही महत पुरुषों ने ऐसी असावधानी रक्खी होती तो उचित कहलाती, क्योंकि उन्हों ने जो जो शोध किये हैं उन के लिये अत्यन्त एकाग्र चित्त की आवश्यकता थी। परन्तु अन्य साधारण मनुष्य को ऐसा बहिर्चित्त होना उचित नहीं और न उस को इतनी स्वतन्त्रता मिल सकती है। उपर्स्थित विषय पर—पीछे वह कैसा ही जान पडे—जो मनुष्य ध्यान नहीं दे सकता, वह किसी कार्य्य करने वा बातचीत के योग्य नहीं। लक्षहीन मनुष्य को

देख कर उस से दूर भागना मुझे अच्छा लगता है क्योंकि अनवधान वा असभ्यता को मैं सहन नहीं कर सकता, अतएव जहां ऐसा मनुष्य हो वहां मेरा रहना अतिही अशक्य हो जाता है।

बहिर्चित्त मनुष्य के पास रहने की अपेक्षा मृतक के समीप रहना मुझ को प्रिय है, क्योंकि यदि मृतक से कोई मनोरंजन नहीं तथापि वह मेरा तिरस्कार तो नहीं करता, और बहिर्चित्त मनुष्य गुप्त रीति से स्पष्ट जतलाता है कि उस के विचार में मैं उस के लक्ष के योग्य नहीं हूं। तदुपरान्त वह अपने साथियों के आचार, व्यवहार, रीतिभांति का अवलोकन नहीं कर सकता। जो सुज्ञ पुरुष उस को अपनी मण्डली में लेवें, तो वह सारी उमर उन के सुसङ्ग मे बिताने पर भी वैसा का वैसाही रहता है। बहिर्चित्त व बधिर मनुष्य दोनों से बातचीत करने में अन्तर नहीं। जब ऐसा जान पडे कि अमुक मनुष्य न तो हमारी बात समझता, न सुनता, और न उस की आवश्यकता रखता है तो फिर उस से वार्त्तालाप करना बडी भूल है।

ध्यान।

जो मनुष्य उपस्थित कार्य्य पर पूरा ध्यान नहीं दे सकता वा नहीं देता और उस कार्य्य को करते समय दूसरे दूसरे कामों को अपने विचार से बाहर नहीं कर सकता, वह न तो काम करने और न सुख भोगने के योग्य होता है। किसी सभा, जेवनार या गोठ में जाकर कोई मनुष्य वहां अपने मन में भूमि के सिद्धान्त सिद्ध करे, वह साथी किस काम का? क्योंकि जिस सुख के भोगने को वह वहां गया था उस को नहीं भोग सकता। ऐसे ही एकान्त में सिद्धान्त सीखने के समय राग रंग का विचार करे तो निश्चित है कि वह गणित शास्त्र में कभी कुशल न होगा। यदि एक काल में एक ही काम करोगे, तो दिन भर में प्रत्येक कार्य्य करने का पूरा

पूरा समय मिल जावेगा; परन्तु जो एक काल में दो कार्य्य ले बैठोगी तो वर्ष भर में भी वे पूरे न हो सकेंगे।

किसी कार्य्य में आतुरता, गडबड़ाहट और घबराहट जताना जैसा क्षुद्र मन का निस्सन्देह चिन्ह है वैसे ही निरन्तर व एकाग्र लक्ष देना एक तीव्र बुद्धि की निशानी है। यथोचित लक्ष देने के विना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता है। कार्य्य में तनिक भी एक चित्त न रह सके, ऐसे मनुष्य-ठीक ठीक देखा जावे तो---विचार शक्ति हीन होने से मूर्ख और मन्द बुद्धि की गिनती में आते हैं। तुम को प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि देना, इतना ही आवश्यक नहीं, परन्तु वह दृष्टि ऐसी त्वरा से दी जावे कि सभा के सारे लोग, उन की गति, मुखमुद्रा और उन के शब्द तुम्हारे ध्यान में आ जावे, सो भी एक टक देखे बिना और लोगों को ऐसा न जान पडे कि तुम चिकित्सा युक्त दृष्टि देते हो। ऐसा तीक्ष्ण व अदृश्य अवलोकन जिन्दगी में अपने को अति लाभदायक है जो सम्भाल रखने से प्राप्त हो सकता है। इस के विरुद्ध विचारहीनता, अर्थात् कर्त्तव्य कार्य्य में असावधान रहना, मनुष्य को मूर्ख या बावला सा बना देती है, व मेरे विचार में उस को इन से कुछ विशेष अन्तर नहीं रहता—मूर्ख में विचारशक्ति मूल में होती ही नहीं, बावले में से जाती रहती, और बहिर्चित्त मनुष्य में—जब वह ऐसी दशा में होता तब—नहीं रहती है।

साराश कि पूरा पूरा ध्यान दिये बिना संसार में पूर्ण ज्ञान कभी प्राप्त नहीं हो सकता है। बहुत से वृद्ध मनुष्यों ने कई वर्ष इस संसार में वास किया तथापि चञ्चलता व लक्षहीनता से उन्हों ने संसार का कुछ भी ज्ञान प्राप्त न कर के इस वय को पहुंचने पर भी निरे बालक ही रहे। कितनी बाहरी मर्य्यादों से जिस को सारे लोग वर्त्तते, और कितनी कला से जिन में कुशल होने का बहुत से यत्न करते हैं, लोगों का असली वर्त्ताव कुछ ढंका रहता, और

उन का बाहरी डौल साधारण रीति से दूसरों से मिलता हुआ दीख पडता है। परन्तु ध्यान दे कर देखनेवाले विचक्षण व चतुर मनुष्य उन के असली स्वभाव को परीक्षा से ढूंढ निकालते है।

इस के अतिरिक्त कितने विषयो पर साधारण ध्यान देने से प्रतिमुखी को प्रसन्नता प्राप्त होती है और यदि ऐसा न किया जावे तो उस के स्वानुराग व मान का, जो मानुषी प्रकृति से अभिन्न है—प्रत्यक्ष भंग करना है; तदुपरान्त हम उस को कैसा चाहते व कैसा जानते है इस के प्रगट करने के लिये भी ऐसा ध्यान रखना अवश्य है। तुम किसी को भोजन के वास्ते बुलाओ तो पूर्व ज्ञान के अनुसार याद कर के कि उस को अमुक भोजन पर रुचि है; वही वस्तु उस को भोजन कराना चाहिये, और निमन्त्रित गृहस्थ को अपनी यह सम्भाल-जतना दी जावे कि अमुक स्थान में आप को अमुक भोजन पर रुचि देख कर आज आप के वास्ते वही बनवाया है। इस प्रकार के बर्त्ताव से, तुम्हारे अन्यान्य स्वादिष्ट भोजन व अति सेवा की अपेक्षा उस के मन में अधिक आनन्द व गर्व उत्पन्न होगा कि यहां मेरा ऐसा सत्कार हुआ। कई मनुष्यों को बहुत सी वस्तु अप्रिय होती है, ऐसा जान कर उन की हंसी करने को, अथवा अनावश्यकता वा भूल से उस वस्तु के बिना काम चल जाने पर भी वही वस्तु उस के सन्मुख धरी या लाओ, तो वह अवश्य मन में जानेगा कि इस ने मेरा अपमान किया व मुझ को तुच्छ जाना और इस बात को वह सदा याद रक्खेगा।

ऐसी छोटी २ बातों पर तुम जितना अधिक ध्यान दोगे उतना ही सन्मुखवाले के मन में जच जायगा कि यह मेरे पर इतना लक्ष देता है; और इस से तुम्हारे साथ उस का मन लीन हो जायगा। तुम ही अपने मन में विचारो कि यदि कोई मनुष्य इसी प्रकार छोटी बातो में तुम्हारा सम्मान करे, तो स्वाभिमान व स्वप्रीति को लिये हुए तुम कितने प्रफुल्लित होगे—यह स्वाभिमान व स्वप्रीति

प्रत्येक जन्मधारी मनुष्य में होते ही हैं—और उस मनुष्य के साथ तुम को कितनी—प्रीति हो कर उस के कथन वा कर्म के अनुसार करने को तुम्हारी इच्छा दौड़ेगी। ऐसे ही तुम भी जो उत्तम मनुष्यो के साथ यही व्यवहार करोगी तो वही लाभ तुम को होगा।

नाना प्रकार की असभ्यता।

कई अच्छे बुद्धिमान पुरुषों को कई कुढंगी चालें करने की वा वैसी ही दूसरी बुरी प्रकृति पड़ जाती है। उन की रीतिभांति असभ्य होने के कारण लोगों को उन से अरुचि और घिन हो जाती, जो अन्य सद्गुण रहने पर भी दूर नहीं होती है। असभ्यता का दुर्गुण दो बातों से उत्पन्न होता है—एक तो सुसङ्ग के न होने से, और दूसरा उस की ओर लक्ष न देने से।

जब कोई फूहड मनुष्य सद्गृहस्थों की मण्डली मे प्रवेश करे तो बैठने के पहले उस की धोती खिसक जाती, धोती बांधने नहीं पाता कि पटली खुल जाती, इतने में पांव में आंटी आ कर लथड़ाता, सम्भलने पर खेस गिर जाता; ऐसी क्रिया करते कहीं गिर जो पडे तो विद्यमान जन हंसते हैं, और कदापि ऐसा न हुआ तो वह बिना विचारे अनुचित स्थान मे बैठ जाता है, बैठने उपरान्त स्वस्थ होने के पूर्व दो चार बार तो पगडी के पेच सुधारने पडते, वस्त्रों से छुटकारा मिला कि नाक मे उंगलियां डाल कर लगे छींक लेने, जिस से पास बैठने वालो पर छींटे जाते, फिर दामन आदि से नसकोरे साफ कर देखते है इस से लोगो को घिन आती है; इसी के साथ आंख वा मुख की क्रिया होवे वह तो जुदा, जब हाथ में कुछ न होवे तो वह निश्चल तो रह नहीं सकते, कभी पगड़ी पर फेरते, कभी कसें मरोड़ते, कभी बांहे चढाते इत्यादि असभ्य क्रिया करते रहते है, सारांश कि सभ्य मनुष्यों का संगति गौरव

उन में नहीं होता है। यह ठीक है कि ये सब बातें हानिकारक नहीं; परन्तु सभा में हसी करानेवाली और अरुचि दिलानेवाली हैं; अतएव जो मनुष्य अपने साथियों को प्रसन्न करना चाहे वह सर्व कुटेवों को सम्भाल रख कर त्याग देवें।

कई एक बातें जिन का करना अनुचित्त है, उन के विचार करने वा सभ्य अनुभवी मनुष्यों की रीति मर्याद पर ध्यान रखने से, सहज में तुम्हारे चित्त में चढ़ जावेंगी, और तदनुसार वर्त्तन की टेव भी पड जावेगी।

इसी प्रकार बातचीत करने में भी असभ्यता होती है। कठोर, ओछे और अप शब्द बोलना बुरी और नीच सङ्गति की निशानी है। वार्त्तालाप में हलके लोगों की रीति वा कुटेव के अनुसार कहावतें कहैं, तो इस से हमारा तोल हो जावेगा कि हमने नीच सङ्गति की है। मन की भी एक असभ्यता है जिस को सम्भाल के साथ दूर करना चाहिये—अर्थात् कोई नाम भूल जाना वा बदल कर दूसरा कह देना; बात करते हुए " इस का नाम क्या " आदि वाक्य बीच बीच मे बोलना; अति असभ्य व अयोग्य का मान कर के योग्य को आदर न देना; थोडा आदर करने के योग्य हो उस का अधिक समान करना आदि। कोई बात जिस को तुम नहीं जानते हो कहने लगजाना और फिर बीच में ऐसा कहना कि " आगे याद नहीं " यह बडी लज्जा की बात है। जो मनुष्य जिस बात को पूरी जानता हो वही उस को कहना उचित है, नहीं तो श्रोता को रोचक न हो कर उल्टी अटपटी आवेगी।

लज्जा।

कुछ बालकों की प्रकृति सङ्कोचवाली होती और जब कोई सभ्य पुरुष उन से बात करता है तो वे सकुच जाते, बराबर उत्तर नहीं दे सकते व लजा के टूटेफूटे वचन कहते है। यह निष्कारण

भय रखना कि ऐसा करने से मेरी हंसी होगी उल्टी अपनी हंसी कराना है। अमर्य्यादिक शङ्का और विनय पूर्वक लज्जा में रात दिन का अन्तर है; अमर्य्यादिक शङ्का करनेवाले हंसे जाते और विनय पूर्वक लज्जावन्त की प्रशंसा होती है। उत्तम मनुष्यों की सभा में बिना घबराहट और मुख बिगाडने के जो हम बातचीत न कर सकें तो धिक्कार है, क्योंकि अधीर, डरपोक और सशंक मनुष्य संसार में कभी उन्नति नहीं कर सकता और कोई भी कार्य्य सिद्ध नहीं कर सकता है। चालाक, खटपटी और अग्रबुद्धि मनुष्य उस को सदा पीछे छोड कर आगे बढ जायगा। बोलने में बहुत अन्तर है। कोई मनुष्य तो किसी बात को इस ढब से कहे कि जिस से वह निर्लज्ज ठहरे; और वही बात दूसरा और प्रकार से कहे तो वह नम्र और योग्य गिना जावे। बुद्धिमान अनुभवी पुरुष अपना हक़ क़ायम रखने और अपना अभिप्राय सिद्ध करने के लिये अति ही निर्लज्ज मनुष्य से भी बढ़ कर हठ, हिम्मत और स्थिरता के साथ करते हैं, परन्तु उन में बडा गुण यह है कि जिन के साथ हठ करते, उन को बाहर से नम्रता प्रकट कर के उन का मन हरण करके और अपनी अर्थ सिद्धि भी कर लेते हैं; कदापि यही हठ कठोर शब्द और चढ़े मुख से होता तो सुनने वाले उस को बुरा जान कर दुःखी होते और इस से कार्य्य सिद्धि कहा तक हो सक्ती है यह तो विचारने से सहज ही ध्यान में आ जावेगा।

बहुत से मनुष्य मण्डली में जाते हुए लजाते हैं। यदि अपने में कोई विचित्रता नहीं तो लज्जा क्यों करें? जैसे घर में निर्भयता के साथ सहज स्वभाव से जाते है वैसे ही दूसरे गृहस्थों की मण्डली में क्यों न जावें? दुर्गुण और अज्ञान, केवल इन दो बातों से लजाना चाहिये, जब ये दोनों ऐब हमारे में नहीं तो निधडक जहां चाहे वहां जाने में कोई हानि नहीं है। शर्म ही से युवा पुरुष कुसङ्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं। जैसे डरपोक पुरुष अतिशय भय पा कर कभी

दुःसाहसी भी हो जाता, वैसे ही शर्म ही शर्म में रह कर कितने एक मनुष्य उस से उत्पन्न हुए दुःख से कातर हो उल्टे बेशर्म बन जाते है। बेशर्मी से बढ कर दुःखदायक बात दूसरी नहीं, अतएव इस को भी त्याग कर सदा मध्य का मार्ग लेना यही एक सुसङ्ग पाये हुए उत्तम पुरुष का लक्षण है। वह जहां जाता वहां सुख पाता और प्रसन्न रहता है, शर्माता नहीं वैसे ही बेशर्म भी नहीं बनता; हलके मनुष्य मण्डली में जाते ही घबरा जाते व शर्माते है, किसी के प्रश्न का उत्तर ठीक २ नहीं दे सकते ; परन्तु अनुभवी सभ्य मनुष्य को ऐसा नहीं होता, वह सभा में आनन्दित, स्वस्थचित्त और निर्भय रहता, ऊचे लोगों से झेंपता नहीं, बिना घबराहट के उन का उचित सन्मान करता और जिस सरलता के साथ साधारण मनुष्य से बात करता वैसे ही राजा से भी निःशङ्क बोलता है। बालपन ही से सुसङ्ग में रहने और बड़े आदमियों से बातचीत का व्यवहार रखने से यह अलभ्य लाभ प्राप्त हो सकता है। सभ्यता की शिक्षा पाया हुआ मनुष्य अपने से न्यूनपदस्थ के साथ निरभिमानता से और बडे लोगों के साथ सन्मान और सरलता से वार्त्तालाप करता है। निरनुभवी श्रेष्ठ बुद्धि वाले की अपेक्षा अल्पबुद्धि परन्तु सद्गृहस्थों की रीति भांति में कुशल मनुष्य की विशेष शोभा होती है। सभ्यता और विवेक युक्त वचन ये दोनों गुण एक स्थान मे होने चाहिये।

सङ्गति।

सुसङ्ग रखने से हमारे लिये लोगों के मन में अच्छे विचार उत्पन्न होते है। मुख्य कर संसार में प्रथम ही पाव बढाने के समय तो सुसङ्ग की अति ही आवश्यकता है। पृथक पृथक टोलियों वाले अपने आप को अच्छे ही बतलाते, परन्तु वह सुसङ्ग नहीं ; सुसङ्ग विशेष कर कुलीन, पदधारी और प्रतिष्ठित गृहस्थों के समागम ही को कहते हैं या जब कोई कुल और पदवी न रखने वाले

मनुष्य भी उत्तम प्रकार के कला कौशल द्वारा प्रख्यात हों, तो वे भी सद्मण्डली में प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश पाते हैं। सद्मण्डली भी प्रायः बहुरङ्गी होती है। कितने ही कुलहीन हलके गुणरहित मनुष्य, आगे बढने की चाल से, सिर मार कर किसी उत्तम मनुष्य की सहायता से उस में प्रवेश पाजाते हैं। ऐसी शिष्टाचारी मण्डली में रहने से उत्कृष्ट रीति भाति और उत्तम भाषा सीखने का अवसर मिल जाता है, क्योंकि उन का लक्ष इन दोनों बातों पर विशेष रहता है। जिस मण्डली में केवल भाषा तो शुद्ध बोली जाती हो परन्तु समयानुकूल शिष्ट व्यवहार न पाये जावें, तो वह: उत्तम नहीं कहलाई जा सकती। क्योंकि उत्तम भाषा बोलने ही से वे सब श्रेष्ठ हो जाते हों यह असम्भव है। ऐसे ही कितने ही बुद्धिमान हों,परन्तु उन की स्थिति नीची हो तो उन की सुमितों की तुलना नहीं दी जा सकती, इस लिये ऐसे मनुष्यों के साथ विशेष सहवास नहीं चाहिये, परन्तु साथ ही उन का तिरस्कार भी न करे। जिस टोली में केवल विद्वान् हों, यद्यपि वह टोली मान पात्र है, परन्तु जिस को हम सुसंङ्ग कहते हे, सो नहीं ; क्योंकि उन को संसार के साथ बहुत थोडा सम्बन्ध होने से सासारिक श्रेष्ठ रीति भांति उन में नहीं पाई जाती है। यदि हम ऐसी सङ्गति में जा सकें तो जाना चाहिये, क्योंकि इस से हम को अन्य २ मण्डलियो में मान मिलेगा। रुचिवन्त और बुद्धिमान युवा पुरुषों को विद्वान् व बुद्धिमानों की सङ्गति से प्रसन्नता होती है, परन्तु जब बुद्धि न हो और उस सङ्गति में जाने का अहङ्कार रक्खे तो निरी मूर्खता है। हां, ऐसी मण्डलियों में जाकर धीरज व विवेक के साथ उन की बात को ध्यान में रखना चाहिये। जैसे स्त्रियां बन्दूक देख कर डर जातीं कि कहीं आप से आप चल कर हमें हानि न पहुंचावे, उसी प्रकार कितने एक मनुष्य बुद्धिमानों की सङ्गति से भय खाते हैं। यह अनुचित बात है। उन से जान पहचान करनी और सावकाश पाकर

उन के पास जाना लाभदायक है। परन्तु ऐसा नहीं कि अन्य सङ्गति त्याग कर उन से ऐसा निरन्तर सम्बन्ध कर लेवे, जिस से लोगों के मन में समाजावे कि अमुक मनुष्य अमुक टोली का है। सारांश कि अपने से बढ चढ़ कर गृहस्थों ही की सङ्गति से उन्नति और नीच सङ्गति से अवनति होती है। यहा उत्तमता का अर्थ केवल उत्तम कुल ही से नहीं लेना, किन्तु जो गुण में और संसारी प्रतिष्ठा में उत्तम हों उन को उत्तम समझना चाहिये।

उत्तम मण्डलियां दो प्रकार की होती है—एक तो राज्य में मान पाये हुए अग्रगण्य और जनमण्डली में प्रतिष्ठित मनुष्यों की, और दूसरी जो अपने ही असाधारण गुण से प्रख्यात हुए वा किसी अन्य कला कौशल में नाम पाये हुओं की। नीची सङ्गति नहीं करनी, क्योंकि वह हरएक बात में नीची ही है—पदवी में नीची, बुद्धि में नीची, रीति भांति में नीची और गुण में नीची। अपनी मूर्खता और अपराध का मूल दुरभिमान है और इसी दुरभिमान से प्रधानता पाने को कई मनुष्य अत्यन्त नीच सङ्गति में जा गिरते हैं, जहां वे शासन करते और उन की मिथ्या प्रशंसा होती है। परन्तु वे तुरन्त नीच हो कर उत्तम सङ्गति में मिलने के अयोग्य हो जाते है। सङ्गति कैसी करनी और कैसी न करनी इस विषय को जनाने के उपरान्त मण्डली की रीति भांति का निरीक्षण कर ग्रहण करने के पूर्व क्या २ सावधानी रखनी जो संक्षेप से कहता हूं:—

जब कोई युवा पुरुष संसार में प्रवेश होते ही प्रथम ही जब किसी टोली में जाता है तो वह अपने साथियों की चाल चलन के अनुसार बर्त्ताव करना निश्चय करता, परन्तु ऐसा करने में भूल खाता है। ललित व लौकिक दुर्व्यसन उस ने सुने है, उस टोली में कितने एक प्रख्यात मनुष्य होते जिन को दूसरी टोली वाले चाहते

तथा उन को प्रशंसा करते हैं; उन को वह भडुवे, जुआरी देखता जिस से आप भी वह दुर्गुण ग्रहण करता है, कारण कि उन की बुराइयों को पूर्णता मान कर उन दुर्गुणों ही से उन को बडप्पन मिला हो ऐसा समझता है। सत्य बात इस के विरुद्ध है, उन को अपनी विद्या, बुद्धि वा अन्य सद्गुणों से प्रतिष्ठा मिली होगी; केवल उन के ऐसे साधारण और लोक प्रसिद्ध दुर्गुणों से विचारवान पुरुष उन को तुच्छ जानते और बुरा कहते हैं; इस से प्रत्यक्ष है कि ऐसे मिश्रित व्यवहार में उत्तम गुणों के साथ किञ्चित् दुर्गुणों को लोग ध्यान में नहीं लाते, परन्तु उन को अच्छा भी नहीं जानते हैं। जो किसी मनुष्य में दुर्भाग्यता से कोई दुर्गुण हो और वह उस का त्याग न करे, तो उतने ही में सन्तोष कर के अन्य लोगों से और अधिक दुर्गुण तो ग्रहण न करना चाहिये। युवा पुरुष अपने दुराचरणी मन से जितने बिगडते, उस से दसगुना अधिक दूसरों के दुर्गुण ग्रहण करने से नाश होते हैं।

उत्तम साथियों के असली गुण ग्रहण करो—अर्थात्, उन का विवेक, उन के सदाचार, उन के मधुर शब्द और उन की बात चीत करने की ढब; परन्तु निश्चय मानो कि इन सब बातों के होते भी उन में कुछेक दुर्गुण हो तो उतनी ही कसर है। जैसे किसी अति स्वरूपवान मनुष्य के चिहरे पर एक मस होवे तो वैसा क्रत्रिम मस हम अपने चिहरे पर करना नहीं चाहते; इसी प्रकार पूर्ण मनुष्य में भी थोडा अवगुण हो तो उसे ग्रहण करने का यत्न हमें न करना चाहिये, परन्तु इस के विरुद्ध ऐसा जान कर कि यदि यह मस न होता तो इस की सौन्दर्य्यता में कुछ कसर न थी। ऐसेही उत्तम साथियों में कुछ अवगुण न होवे तो इस से अधिक और क्या चाहिये।

शुभ मण्डल में तुम को अति आदरप्राप्त हो, ऐसे गुण वाले होने की सूचना करने के उपरान्त, सांसारिक व्यवहार में समान उपयोगी और आवश्यक सूचना और सम्भाषण के नियम आगे बतलाता हूं।

सम्भाषण के नियम।

वार्तालाप।

मण्डली में तुम को समयानुसार बोलना, परन्तु कोई बात विस्तार के साथ नहीं कहना चाहिये; समयानुसार बोलने से यदि श्रोता प्रसन्न न होंगे तो अरुचि तो नहीं आवेगी।

बहुत वार्तालाप करने के पूर्व मण्डली के लोगों का चाल ढाल से जानकार होना अवश्य है।

अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार बोल देने के पूर्व अपने साथियों की स्थिति व रीति रिवाज का जानना उचित है। मण्डली में कभी २ अच्छे आदमियों की अपेक्षा बुरे अधिक होते, और जिन की निन्दा बुरी लगे ऐसों की अपेक्षा निन्दा के पात्र विशेष होते हैं। तुम किसी सद्गुण की विस्तारपूर्वक प्रशंसा करो, जो उस टोली में के कितने एक मनुष्यों में प्रसिद्ध रीति से न होवे; अथवा किसी दुर्गुण की निन्दा करो जिस से कई लोग ग्रस्त होवें, तब तुम्हारी वह टीका सामान्य रीति की होने वा मुख्य कर किसी से सम्बन्ध न रखने पर भी उन लोगों से उस का सम्बन्ध होने के खास उन्हीं के वास्ते कही हो ऐसा जान पड़ेगा। यह विचार पूर्ण रीति से प्रकट करना है कि तुम्हें स्वयं वह भी अथवा सन्दिग्ध न होना, और ऐसा भी न धारना चाहिये कि यदि कोई बात हमारे पर घटती हो तो वह हमारे लिये ही कही गई है।

आख्यान कहना वा एक बात से दूसरी पर उत्तर जाना।

व्यर्थ बात कहने की टेव डालना ही नहीं; हां, यदि ऐसा हो कि अमुक अवसर पर कहना उचित, और बात छोटी है तो उस

समय उस का निर्जीव भाग त्याग कर कहना, परन्तु इस की सम्भाल रखनी, कि प्रचलित प्रकरण को छोड कर दूसरे पर न चले जाओ। बनी हुई बात को बारम्बार कहने से कल्पनाशक्ति की अपूर्णता प्रकट होती है।

बात करते हुए, लोगों के बटन् आदि पकड़ना।

अपनी बात सुनाने के लिये किसी का बटन्, कस, हाथ आदि पकडना अनुचित है, क्योंकि यदि वह तुम्हारी बात सुनना न चाहे तो अच्छा होगा कि अपनी जिह्वा ही पकड रक्खी जावे।

बहुत काल तक बकने और काना फूसी करने वाले।

ऐसे मनुष्य धीमे स्वर से अपनी निरुपयोगी लम्बी कथा सुनाने के वास्ते मण्डली में से किसी अभागे को ढूंढ लेते हैं। यह अति क्षुद्र काम व कितनेक अंश में धोखा है; क्योंकि बातचीत का कोष सामान्य व साधारण सम्पत्ति है; परन्तु यदि ऐसा निर्दयी बतोड तुम्हारे आगे बात करने लगजावे तो धीरज से (मानो ध्यान देते हो ऐसा डोल बतला कर) उस की बात सुनना चाहिये, उस अवस्था में जब कि वक्ता उपकार का पात्र होवे, क्योंकि ऐसा करने से वह तुम्हारा अत्यन्त आभारी होगा; व यदि उस की बात अधूरी छोड कर चल दोगे या उस को ऐसा प्रतीत हो जावेगा कि तुम घबरा कर अधीरे हो गये हो; तो इस से बढ कर दुःखदायक उस को अन्य बात न होगी।

बात करने वाले की तरफ ध्यान न देना।

जो मनुष्य तुम्हारे साथ बात करता होवे उस को यह प्रकट हो जावे कि तुम्हारा ध्यान देने का डौल केवल उस को बतलाने के लिये है, तो वह अति दुःखी हो कर इस को कभी नहीं भूलता है।

कई एक मनुष्य ऊपर कहे अनुसार ध्यान न देने से भी घट कर अन्य हलकी बातों से क्षुद्र हो जाते हैं, ऐसे कई उदाहरण मेरी जान में है। हम किसी के साथ बात करें उस समय वह हमारी ओर देखने वा ध्यान देने के एवज़ ऊपर को ताके, इधर उधर देखे, डिबिया निकाल कर नासिका सूंघने लगजावे आदि; तो इस से यही स्पष्ट नहीं होता कि उस का चित्त हलका और चञ्चल है, परन्तु यह भी मालूम हो जाता है कि वह ओछी सङ्गति में बड़ा हुआ है। कोई मनुष्य कितनी ही तुच्छ बात करता हो तथापि उस को यह बतलाना चाहिये कि इस से बढ़ कर अत्यन्त तुच्छ बात पर ध्यान देने का हमारा मत है।

स्वाभिमानी मनुष्य की बात पर ध्यान न देने से उस के हृदय में धिक्कारने और बैर लेने के कैसे विचार उत्पन्न होते हैं; जिन को विचार से जानलो। मैं फिर भी यही कहता हूं कि चाहे जिस स्थिति वा पद का मनुष्य हो उस को स्वाभिमान व स्वप्रीति रहती ही है। एक दास को भी मारना जितना बुरा न लगेगा उस से अधिक धिक्कारना व तिरस्कार करना बुरा लगेगा; अतएव अपने साथ बात करने वाले को प्रकट में दर्शा दो कि हम तुम्हारी बात पर ध्यान देते है।

किसी की बात के बीच में न बोल उठना।

बोलते हुए के बीच में बोल कर श्रोता का लक्ष फिराना अत्यन्त ही क्षुद्र चाल गिनी जाती है; इस बात से तो बालक भी परिचित हैं।

नया विषय कहने की अपेक्षा अन्य के विषय ही को ग्रहण करना।

तुम जिस मण्डली में शामिल हो, उस में अपनी तरफ से नया विषय जमाने की अपेक्षा कोई कहता हो उसही विषय में

प्रसङ्गागत बोलना अच्छा है। यदि तुम्हारे में शक्ति होगी तो इस विषय पर न्यूनाधिक कह सकोगे; परन्तु ऐसा न होते, अपनी बात कहने से दूसरे का सुनना ही ठीक है।

मण्डली में अपनी विद्वत्ता प्रकाश न करनी।

किसी अमुक समय के अतिरिक्त अपनी विद्वत्ता का प्रकाश करना अयोग्य है। उस विद्वत्ता को विद्वानों के लिये रख छोड़ो; और उन में भी स्वयं प्रकाश करने की अपेक्षा पूछे जाने पर प्रकट करना अच्छा होता है। इस से यह सिद्ध होगा कि तुम अति नम्र हो, और मूल ज्ञान से भी अधिक विद्या तुम्हारे पास होने की प्रतिष्ठा होगी। अपने साथियों से बढ़ कर विद्वान व बुद्धिमान होना कभी प्रकट न करो। जो मनुष्य अपनी विद्वत्ता प्रकट करने का ढोंग करता है उस से तत्काल प्रश्न किये जाते, कदापि उस वक्त पोल खुल गई तो हंसी और तिरस्कार होगा, और यदि ठीक रहा तो अभिमानी गिना जावेगा। सच्ची योग्यता का प्रकाश स्वय ही जाता है; परन्तु गुण को किसी ढोंग से प्रकाशित करने में उस को दर अन्य२ कारणों से घटती हो उस से भी अधिक घट जाती है।

विरुद्ध भाषण सभ्यता और मृदुवाणी से करना।

जब तुम किसी मनुष्य के मत तथा भाषण से विरुद्ध करना चाहो, तो अपने बोलने को ढङ्ग, मुखमुद्रा, तथा शब्द और स्वर बिना ढोंग के स्वाभाविक, मृदु और शान्त रखने चाहिये। जब विरुद्ध बोलना हो तब "मैं भूलता न होऊं तो"; "मुझे निश्चय नहीं परन्तु जान पड़ता है"; "मैं धारता हूं" इत्यादि कोमल वाक्यों से प्रारम्भ करना। वाद के अन्त में सदा ऐसे सारगर्भित, मधुर व प्रिय शब्दों का उपयोग करना चाहिये, जिन से यह स्पष्ट हो जावे कि न तो तुम इस से अप्रसन्न हुए, और न तुम्हारा सम्भाषण श्रोता लोगों को अप्रसन्न करने के लिये है; क्योंकि दीर्घ काल तक वाद

चलने में उभय पक्षवालों के अन्तः करण में कुछ विरोध पाया जाता है।

जहां तक होसके वाद करना ही नहीं।

जहां तक हो सके मिश्र मण्डली में वाद सहित विरुद्ध बातचीत न करो, क्योंकि ऐसा होने में उभय पक्ष वालों के चित्त में जहां तक तकरार चले वहां तक—एक दूसरे के साथ अन्तर आये बिना रहता ही नहीं। यदि वाद बढ जावे तो धीमेपन के साथ उस को ठट्ठे में ले जाकर वा निर्जीव करके काट डालो।

सदा शान्त स्वाभाव से वाद करना।

यदि अपने को भासता हो, वा जानते हो कि अपनी बात सच्ची है तथापि आग्रह और उत्ताप के साथ न कहनी चाहिये; अपना अभिप्राय सरलता व नम्रता के साथ प्रकट कर देना, इस पर भी सिद्धि न हो तो कह देना कि हम से एक दूसरे की तृप्ति होगी नहीं, व हम को विश्वास दिलाने की आवश्यकता भी नहीं, अतएव और प्रसङ्ग छेडिये। ऐसा कह कर बात फिराने का यत्न करना चाहिये।

भिन्न भिन्न मण्डल में वहां की मुख्य रीति के अनुसार वर्त्ताव करना।

प्रत्येक मनुष्य को यह ध्यान में रखना चाहिये कि भिन्न २ मण्डल में, उन हरेक की कुछ न कुछ प्रधान रीति होती है; और किसी कारण से एक स्थान पर की योग्य बात दूसरे स्थान में अयोग्य ठहरती है।

हंसी ठट्ठा आदि।

किसी प्रकार का हंसी ठट्ठा एक मण्डल में प्रिय और दूसरे में अप्रिय होता है। किसी मण्डल में उस की प्रधान रीति भांति, वर्त्ताव, व बोलचाल की रूढ़ि को लिये हुए, अमुक शब्द चालढाल

अति मान्य होवे, तो दूसरे मण्डल में वे प्रधान गुण न होते, वेही शब्द चाल ढाल आदि वहां अप्रिय होते हैं। किसी एक बात से एक मण्डल में तुम को आनन्द मिले, परन्तु उस से भिन्न रुचिवाले मण्डल में तुम्हारी वही बात निरस ही नहीं, किन्तु विना अवसर व अनुचित प्रसङ्ग पर कही जावे तो मण्डलीवालों को क्रोधित कर देती है। कभी कभी कितने एक मनुष्य किसी प्रसङ्ग के छेडते ही कह देते है कि "मैं तुम को एक अति उत्तम अथवा अत्यन्त हास्य रस की बात कहता हूं"। ऐसा सुनते श्रोता के चित्त में बडी आशा बंधती; दैवयोग से वह बात वैसी न निकली तो श्रोता निराश होते व वक्ता मूर्ख ठहरता है।

आत्म प्रशंसा।

जहां तक हो सके आत्मप्रशंसा कभी मत करो। कितने एक मनुष्य निष्कारण वा आवश्यकता न होते भी एकाएक अपने वखान करने लग जाते है यह महा मूर्खता है। कितने एक तो अपने विचार के अनुसार वडी युक्ति से आत्मप्रशंसा करते है, अर्थात् कोई कल्पित बात छेड कर कहने लगते कि "लोग मेरे पर अमुक दोषारोप करते, अमुक बुरी बातें मेरे लिये कहते" आदि कथन उपरान्त अपना बचाव करने में अपने सद्गुणों की नामावली वर्णन कर जाते है। बात करते समय पुनि ऐसे ऐसे उपोद्घात करते कि "मैं मानता हूं कि इस प्रकार अपने आप की अपेक्षा कुछ कहना बहुत बुरा है, मुझे ऐसा करने से अत्यन्त घिन है; यदि इस तरह निन्दा के निमित्त अन्याययुक्त मुझ पर दोष न लगाये जाते तो मैं कभी अपने गुणों का वखान न करता।" परन्तु मिथ्याभिमान पर डाला हुआ ऐसा विनयरूप पर्दा इतना पारदर्शक होता है कि जिन पुरुषों को थोड़ी भी विचारशक्ति हो उन से वह अभिमान छुपा नहीं रह सकता।

कितने एक मनुष्य इस से अधिक विनय व प्रपञ्च के साथ अपना काम चलाते हैं :—वे प्रथम अपने अवगुण प्रकट कर उन के कारण से अपने को हतभाग्य बतलाते व कहते हैं कि मुख्य सद्गुण हमारे में नहीं इस से हम दोषित होना स्वीकार करते हैं ; और अपने अवगुण इस प्रकार जतलाते—" दुःखी मनुष्यों को देख कर मुझे दया उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती; उन की सहायता के निमित्त प्रयास किये बिना रहा नहीं जाता; अपने बन्धुवर्गों को दुर्दशा में देख कर उन को उस से मुक्त किये बिना चैन नहीं पड़ता; तथापि सत्य पूछो तो मेरी स्थिति ये श्लाघ्य करने योग्य नहीं। मैं स्वीकार करता हूं कि किसी समय पर सत्य बोलना मूर्खता है, परन्तु मुझ से तो सत्य सिवाय कुछ कहा ही नहीं जाता; सारांश कि इन सब अवगुणों युक्त होने से मैं संसार में रहने योग्य नहीं, तो उत्कृष्ट होने की तो बात ही क्या; परन्तु अब उमर आ गई, पड़ी हुई प्रकृति बदल नहीं सकती, अतएव जैसे तैसे कर के शेष दिन पूरे करते हैं।"

नाटकशाला की रङ्गभूमि पर ऐसा बनाव अति हास्यकारक व साधारण नियम के भी विरुद्ध है, परन्तु जगत्‌रूपी नाटक की साधारण रङ्गभूमि पर बारम्बार ऐसा देखने में आता है। मिथ्याभिमान व गर्व मनुष्य की प्रकृति के साथ ऐसा पक्की हो कर मिल जाता है कि अत्यन्त क्षुद्र विषयों में भी उस की झलक दिखाई देती है। यदि ऐसा भी मान लें कि जो वे कहते है सब सत्य है, तथापि सम्यक दृष्टि से यह कार्य्य कुछ प्रशंसा योग्य न होने पर भी लोग उस में अपनी कीर्ति बढ़ाने को जाल फैलाया करते हैं। कदाचित् कोई मनुष्य विश्वास के साथ ऐसा कहे कि अमुक डाकिया छः घण्टे में सौ मील घोड़े पर गया, तो विशेष कर के तो यह बात मिथ्या ही है; परन्तु माना कि ऐसा हुआ भी हो तो क्या। बहुत हुआ तो ऐसा कहेंगे कि वह बड़ा फुर्तीला हरकारा

था। दूसरा आ कर शपथ के साथ कहे कि मैं एक आसन बैठे छः वा आठ बोतल मदिरा पी गया, तो धार्मिक बुद्धि से ऐसा मानना चाहिये कि यह झूठा है, क्योंकि यदि ऐसा न समझें तो फिर उस को पशु मानना पड़ेगा।

मिथ्याभिमान से मनुष्य ऐसी २ सहस्रों मूर्खता करते भी अपने अभिप्राय में फलित नहीं होते हैं। इस दुःख से निवृत्त होने का केवल एक ही उपाय है कि आत्मश्लाघा कभी न करनी। यदि कोई बीती हुई बात के वर्णन में भी अपने लिये कुछ कहना पड़े तो प्रसिद्ध वा गुप्त रीति से जाना जावे ऐसा एक शब्द भी भूल चूक कर न निकलना चाहिये। अपने आचार चाहे जैसे हों वे स्वयं प्रकट हो जांयगे; परन्तु जो कह कर जनाये जावें तो लोग उस पर विश्वास न करेंगे। अपने मुख से कुछ भी न कहें तथापि अपनी ऐब ढकती नहीं, व न अपनी पूर्णता छिपी रहती; परन्तु कहने से उलटे ऐब प्रकट होते व पूर्णता छिप जाती है। हम अपने गुण वर्णन करने में मौन साधें तो जो मनुष्य हमारा ईर्ष्या तिरस्कार या हंसी करते हैं, उन की सामर्थ्य नहीं कि हमारे गुण की योग्य प्रशंसा होने को रोक सकें या न्यून कर सकें; परन्तु हम ही अपने प्रशंसक बन जावें तो इस को बहुत युक्ति से गुप्त रखने पर भी लोग हमारे विरुद्ध होंगे, और अपनी कार्य्यसिद्धि में निराश होवेंगे।

बात करने में गूढ़ या अप्रसिद्ध शब्दों का उपयोग न करना।

सम्भाषण में कोई भी गूढ़ या अप्रसिद्ध शब्द न आने पावे इस की सावधानी रखना चाहिये; कारण कि इस से श्रोता को खट-पटी हो नहीं आती, वरन् तुम्हारी वृत्ति पर भी संशय उत्पन्न होता है। जो तुम उन को गूढ़ जनाओगे तो वे भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे, जिस से तुम को कुछ भी ज्ञान नहीं होगा।

बुद्धि की पराकाष्ठा तो इस पर है कि वार्तालाप के समय अन्तर में विवेक और सङ्कोच रखते हुए बाहर से भोलापन, स्पष्टवक्ता-पन और सरलता प्रकट करनी; और आप सावधान रह कर स्वाभाविक स्पष्टता का आकार बांध सम्मुखवाले पुरुष को असा-वधान बनाना। तुम्हारी अविचारता व असावधानी से थोड़ा भी कहे हुए का लाभ अपङ्की के बहुत से मनुष्य प्राप्त कर लेंगे।

बात चीत करनेवाले के मुख की तर्फ़ देखते हुए बोलो।

जिस के साथ बात करो सदा उस के मुख की ओर देखते हुए बोलो। यदि ऐसा न करोगे तो प्रतीत होगा कि तुम कुछ दबे हुए हो, तदुपरान्त तुम्हारी बात का श्रोता पर क्या असर हुआ, वह उस की आकृति से जान लेने का लाभ भी तुम को प्राप्त न हो सकेगा। मनुष्यों के असली अभिप्राय जानने में मैं अपने कान की अपेक्षा आंख पर अधिक आधार रखता हूं; क्योंकि कान तो केवल उसी वस्तु को जना सकता है जिस के जानने की इच्छा हो, परन्तु आंख तो अमुक वस्तु मुझे जानना चाहिये, ऐसा सङ्कल्प न होते भी, उस वस्तु के जनाये बिना नहीं रहती।

चुग़ली।

किसी के निज की बातें (गुप्त) न तो इच्छा के साथ सुननी और न उन का संग्रह करना चाहिये, क्योंकि लोगों की चुग़ली उस वक्त तो अपनी ईर्ष्या व अहङ्कार को सन्तुष्ट कर देगी परन्तु शान्त विचार से जाना जावेगा कि ऐसे स्वभाव का परिणाम हानिकारक होता है। चोरी के तुल्य चुग़ली में भी, उस का ग्रहण करनेवाला चोर के जितना ही दुष्ट गिना जाता है।

सार्वजनिक टीका न करनी ।

बातचीत करने में किसी जात की समाज पर अपने बुरे विचार मत दरशाओ। इस से निष्प्रयोजन तुम्हारे बहुत से शत्रु हो जावेंगे। पुरुषों व स्त्रियों में उत्तम अधम होते ही हैं। और कभी २ बुरों की अपेक्षा अच्छों का भाग अधिक होता है, वकील, योद्धा, धर्म्मोपदेशक, दर्बारी, नगरनिवासी आदि सब में ऐसाही जानो। ये भी सर्व मनुष्य हैं, सब एक ही दृष्टि और विचार के आधीन है, केवल अपनी २ भिन्न २ प्रकार की शिक्षा के आधार-पर उन की रीतिमाल में अन्तर है; परन्तु इन के किसी समूह की टीका करनी, यह जितना अन्यायकारी उतना ही मूर्खता से भरा हुआ है। कोई बात किसी एक मनुष्य को बुरी मालूम दे तो वह क्षमा भी कर सकता है, परन्तु समूह में ऐसा नहीं हो सकता। धर्मगुरुओं की बुराई करना, कितनेक युवा पुरुष गृहस्थ के लक्षण जानते होशियारी का चिन्ह समझते हैं; परन्तु ऐसी समझ से वे बहुत ठगाते हैं, क्योंकि धर्मगुरु भी मनुष्य ही हैं, किसी वस्त्र विशेष के पहनने से भले या बुरे नहीं कहे जा सकते हैं। प्रजा वा अन्य समूह पर उन प्रत्येक से सम्बन्ध रखने वाली टीका निर्बुद्धि लोग करते, जो बुद्धिमानों में गिने जाने को ऐसे सामान्य विषय पर बातें चलाते हैं। व्यक्ति की परीक्षा उस की ज्ञाति धन्धे वा पद पर से नहीं, किन्तु उस के विषय में अपने अनुभव से करनी चाहिये।

नक़ल करना।

क्षुद्र व ओछे मनुष्य नक़ल करने को साधारण व प्रिय मनोरञ्जन समझते, परन्तु उत्तम जन उस की निन्दा करते हैं।

ठट्ठे की पंक्ति में भी नकल करने की कुटेव मद्दा नीच व अति असभ्य गिनी जाती है। इस में न तो नकल करनी और न दूसरा करे तो उसे सराहना चाहिये। जिस की नकल निकाली जाती उस का अपमान होता और जैसा कि मैं ने पूर्व में कई बार कहा, वह अपमान कभी भूला नहीं जाता है।

शपथ खाना।

मुसङ्गति में बातचीत के मध्य कई मनुष्यों को प्रायः शपथ-खाते हुए सुनते हैं। वे समझते कि ऐसा करने से हमारी बात शोपित होती है। परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि किसी मण्डल के अच्छा कहलाने में किरिया खाने वालों का लेश मात्र भी भारा नहीं है। ऐसे मनुष्य विशेष कर हलकी शिक्षा पाये हुए होते हैं, कारण कि शपथ पूर्वक विश्वास दिलाने के किसी कारण बिना शपथ खाना जितना बुरा है उतना ही फूहड़ंगा और नादानी से भरा हुआ भी है।

नाक मुंह सिकोड़ना।

गर्विष्ट तथा तिरस्कार से भरी हुई सूरत बना कर, घबराहट के दिखाव से, या नादानी के साथ खाली दांत पीस कर या हंस कर जो मनुष्य मण्डली में कुछ भी बात कहे तो सब उस की निन्दा करेंगे; यदि वह बड़बड़ावे या कोई न समझे इस रीति से भयगणाहट के साथ बोले तो और भी अधिक बुराई होगी।

अपनी निज की, वा अन्य की गुप्त बात किसी के आगे न कहना।

अपनी वा दूसरे की घर कुटुम्ब सम्बन्धी बात कभी न करना चाहिये, कारण कि तुम्हारे घर की बात दूसरे को निष्प्रयोजन,

ऐसेही दूसरों के घर की बात तुम को निरुपयोगी है। घर कुटुम्ब सम्बन्धी विषय अति सूक्ष्म, विवेक का होता है, उस की बात किसी को बुरी न लगी तो बड़ो भाग्य जानना। प्रत्येक कुटुम्ब के वाह्य दिखाव पर विश्वास न रखना, क्योंकि उस में के वधू वर, माता पिता, बाल बच्चों और प्रकट मित्रों का अन्तरङ्ग सम्बन्ध उस दिखाव से इतना भिन्न होता है कि अपना अति पवित्र हेतु होने पर भी, अपनी बात में से कुछ न कुछ किसी के प्रतिकूल पड़ ही जाता है।

कथन में स्पष्टता।

निरस व अगम्य हंसी ठट्ठा मण्डली में कोई मनुष्य करे तो वह मूर्ख बनता है। जब वह जानता है कि मेरी बात सब को प्रिय होगी, परन्तु वैसा न होते लोग कुछ भी न बोलें तब, अथवा संयोग से उस को अपनी बात समझा कर कहने के लिये कहा जावे, तब आप को कैसी कुढंगी और घबराहट भरी स्थिति होती है, जिस की कल्पना, वर्णन की अपेक्षा सुलभता से हो सकती है।

गुप्तता।

जो बात तुम ने एक मण्डली में सुनी हो उस को दूसरी में कहने की सम्भाल रक्खो। कोई बात दिखने में निर्जीव, परन्तु उस के फैल जाने से कभी २ उस का बुरा परिणाम हमारी कल्पना से बढ़ कर निकलता है। बात-चीत के समय एक दूसरे के मन में ऐसा विश्वास होता है कि यदि प्रकट में उस बात को गुप्त रखने को नहीं कहा जाता, तथापि श्रोता उस को गुप्त रखने के धर्म में बंध जाता है।

जिस के पेट में बात न पचती होवे, उस को सहस्रों विघ्न व पञ्चायत आ पड़ते हैं, वह जहां जाता उस का आदर नहीं होता और लोग उस से डर कर बात करते हैं।

जैसा मनुष्य वैसी बात।

जैसे मनुष्य के साथ बात करते हो सदा उस के साथ उसी ढंग से बातचीत करो। क्योंकि मेरे अनुभव में धर्म्माध्यक्ष, पण्डित, सेनापति और स्त्रियों के साथ एक ही विषय पर समान रीति से बातचीत करना ठीक नहीं।

मण्डली में कोई बात व हंसी होती हो, उस को अपने पर खींच कर मत लगाओ और न ऐसी विचार करो कि वे तुम्हारे विषय में कहते हैं।

साधारण वा हलकी शिक्षा के लोग जब उत्तम मनुष्यों की मण्डली में आते तब ऐसा मानते हैं कि हम ही इस मण्डल के ध्यान का विषय हैं। वहां यदि कोई कुछ गुप्त बात करे तो वे तुरन्त निश्चयपूर्वक धार लेते हैं कि इन्हों ने हमारी ही बात की, कोई हंसे, तो मान लेते कि हमारे पर हंसे; कदाचित् किसी ने कुछ अस्पष्ट बात कही जो बलात्कार से उन के सम्बन्ध में लग सके, तो उन को विश्वास हो जाता है कि यह हमारे ही उद्देश्य पर कही गई है। इस का यह परिणाम होता कि प्रथम उन का चिहरा उतर जाता, व फिर क्रोध आता है। कुलीन पुरुष तो, जब तक कि उन को अपेक्षा स्पष्ट रीति से कोई ऐसी बात न कही जावे, कि अपनी प्रतिष्ठा के बचाव में उन्हें उस

के विरुद्ध योग्य रीति से उस का तिरस्कार प्रकट करना पड़े, तब तक ऐसा धारते ही नहीं कि हमारा अपमान या हास्य हुआ ; जो कदाचित् धारा भी तो प्रकट नहीं दर्शाते ; परन्तु हलके मनुष्य निर्जीव विषयों पर भी असह्य, आतुर व तामसी हो कर तकरार कर बैठते हैं। उन को वहम होता कि ये मनुष्य मेरी निन्दा करते, जो कहते सब हमारे लिये कहते; और जो हंसी की बात चल गई तो अपने मन में समझते हैं कि ये मुझ ही को हंसते हैं, अतएव क्रोध युक्त हो कर कोई अति असभ्य वचन निकाल देते और अपनी समझ के अनुसार सच्चा साहस प्रकट करते हुए आप ही फंस जाते हैं।

ओछे पात्र की बातचीत ही से जान लिया जाता है कि यह सुसङ्गी वा सुसंस्कृत नहीं है। वह विशेष कर अपने घर सम्बन्धी विषय, अपने सेवक तथा कुटुम्ब के साथ अपनी उत्तम व्यवस्था, और पड़ोसियों की छोटी २ बातों का वर्णन इस ज़ोर के साथ करता है कि मानो वे महा रसीले विषय हों।

मितव्यता वा अल्पव्यय ।

बुद्धिमान मनुष्य लाभ व मान का मिलान कर के व्यय करता, परन्तु मूर्ख लाभालाभ के विचार बिना ही उड़ाता है। बुद्धिमान द्रव्य का समय के तुल्य उपयोग कर अपने को वा अन्य को उचित लाभ पहुंचाने वाले कार्य्य के सिवाय अन्य कार्य्यों में एक क्षण वा एक पैसा भी व्यय नहीं करता है। मूर्ख, जिस वस्तु की उसे आवश्यकता न हो उसे तो खरीद लेता, व उपयोगी वस्तु के लिये दमड़ी नहीं खर्चता है। खिलौने वाले की दूकान पर तो टूटही जाता, तम्बाकू की डिब्बियां, घड़ी, छड़ी आदि अवश्य उस की थैली खाली करते हैं, उस के दास व व्योपारी उस के अन्धेर से लाभ

उठा कर उस को ठगते हैं। परन्तु थोड़े काल पीछे निरुपयोगी हंसने लायक छोटी २ वस्तु अपने पास होते हुए भी उस को आश्चर्य होता है कि जीवन की शक्ति आवश्यक सुखदायक वस्तु तो मेरे पास है ही नहीं।

सम्भाल और संयम के बिना असंख्य द्रव्य पाने पर भी सर्व आवश्यक व्यय का पूरा नहीं पड़ता, और इन के रखने से थोड़े द्रव्य से भी आवश्यक कार्य्य चल सकता है। जो वस्तु तुम मोल लो उस के दाम जहां तक बन सके रोकड़ देदो, उधार मत करो और रुपया अपने सन्मुख चुकाओ, नौकरों के द्वारा नहीं, क्योंकि वे उस में से दल्लाली खाने की ताक लगावेंगे। साधारण घर खर्च की वस्तुओं का प्रति मास बिल कराना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं, परन्तु उस के रुपये समय पर अपने हाथ से चुका देने में आलस्य कदापि न करो। यह वस्तु सस्ती है ऐसी ग़लत मितव्यता के साथ, या बड़प्पन के अभिमान में आ कर (यह वस्तु बहुमूल्य है, हमारे चाहिये) कोई वस्तु जिस की तुम्हे आवश्यकता न हो कभी मत खरीदो। अपनी आय व्यय का हिसाब एक किताब में रखना चाहिये, क्योंकि निज आय व्यय को जाननेवाला मनुष्य कभी धोखा नहीं खाता है। इस कथन से यह अभिप्राय नहीं है कि अल्प व्यय का भी कौड़ी २ का हिसाब रखना, क्योंकि यह केवल काल का व्यर्थ खोना है। आलसी कृपण मनुष्य ऐसी निर्जीव बातों पर चाहे ध्यान दिया करै; परन्तु तुम्हे इतना विचार अवश्य रखना चाहिये कि सांसारिक अन्य रीतियों के तुल्य अल्प व्यय पर उचित ध्यान दिया जावे और निर्जीव विषयों पर योग्य धिक्कार प्रकट किया जावे।

मित्रता ।

युवा पुरुषों में अक्सर अरक्षित स्पष्टवक्तापन होने से, वे धूर्त्तता में परिपक्व हुए मनुष्यों के सहज आखेट बन जाते हैं। कोई धूर्त्त या मूर्ख उन से कहे कि मैं तुम्हारा मित्र हूं, तो वे उस को सच्चा मित्र जान कर उस क्षणिक मित्रता के वचन पर उस में बिना बिचारे बेहद्द विश्वास कर लेने से उन को सदा हानि ही नहीं पहुंचती, किन्तु बहुधा नाशकारक परिणाम निपजता है। ऐसी भेट की हुई मित्रता से सदा सावधान रहना चाहिये, ऐसे मित्र जब आवे तो उन से अति शिष्टाचार के साथ मिलना, परन्तु उन के वचन में भरोसा न रखना चाहिये। उन से वार्त्तालाप करना, परन्तु विश्वास रहित। ऐसा कभी मत जानो कि मित्र थोड़ी सी जान पहचान या प्रथम ही मिलाप में बन जाते है, सच्ची मित्रता धीरे २ उत्पन्न हो कर अन्योऽन्य के गुण का ज्ञान हुए विना कभी दृढ़ता को नहीं पहुंचती है।

जवान आदमियों में एक प्रकार की और नाम मात्र की मित्रता होती है जो कुछ काल तक बनी रहती। परन्तु भाग्य-वश दीर्घकाल तक नहीं ठहरती है। अचांचक के समागम, व व्यसन वा विषय के एक ही मार्ग में लग जाने से ऐसी मित्रता एकदम बंध जाती है। यह सचमुच भला मित्राचार है। जो विषयाशक्ति और व्यसन से दृढ़ होवे, इस को तो नीति और श्रेष्ठ रीति के विरुद्ध एक प्रकार की गोष्ठ कहना चाहिये, और ऐसे मित्र न्यायाधीश की शिक्षा के पात्र है। ऐसे नीच सम्बन्ध को मित्रता से नामाङ्कित करना क्या मूर्खता और दुष्टता नहीं? दुष्ट कर्म में व्यय करने को वे परस्पर द्रव्य लेते देते, अपना दुष्ट

अभिप्राय सिद्ध करने के लिये बचाव वा आक्रमण के झगड़ों में वे एक दूसरे की सहायता करते, जो बात वे जानते वह और अधिक भी बना कर एक दूसरे को कहते सुनते हैं। किसी बाधा के पड़ने पर तुरन्त ऐसा बन्धुत्व टूट जाता और फिर मानो कभी मिले ही न होवें, ऐसे एक दूसरे को कभी नहीं सम्भालते हैं; और जो याद भी किया तो अपने में स्थिर किये हुए, वा अपने दिलाये हुए अयोग्य विश्वास की हंसी करने, या उस को प्रकट करने के प्रसङ्ग में।

जिस बात को साधारण रीति से कहना बस है, उस को निश्चय वा शपथ के साथ बड़े गुरुत्व से कहे तो जानो कि वह मनुष्य तुम को ठगने के निमित्त आया है, और उस बात को तुम्हारे चित्त पर चढ़ाने से उस को कुछ लाभ है, नहीं तो इतनी युक्ति को काम में नहीं लाता।

मित्र और साथी में बहुत भेद है, इस को ध्यान में रक्खो। क्योंकि अति मिलनसार और सच्चा सङ्गी बहुधा अति अयोग्य और हानिदायक मित्र होता है। लोगों का जैसा अभिप्राय तुम्हारे मित्र के विषय में होगा वैसा ही तुम्हारे लिये भी उन के मन में आवेगा, स्पेन देश की एक जनश्रुति है कि "तुम किस के साथ रहते हो यह मुझे बता दो तो मैं कह दूंगा कि तुम कैसे हो"। कोई मनुष्य किसी कुकर्मी वा नादान के साथ मित्रता करे, तो लोगों के मन में सहज ही यह विचार बंधेगा कि इस को कुछ दुष्ट कर्म करना होगा, या किया होगा, जिस को छिपाना चाहता है। खल और मूर्खों की संख्या अधिक होने से यदि तुम उन की मित्रता (जो इस सम्बन्ध को यह नाम दिया जा सके) का युक्ति से निषेध करो तो अकारण उन

के साथ द्वेष होने का प्रसङ्ग कभी न आवेगा। ऐसे नादान व कुकर्मियों के साथ विग्रह व सन्धि करने की अपेक्षा उदासीनता पूर्वक वर्त्तना सम्मत है। तुम उन के अवगुण वा मूर्खता का स्पष्ट रीति से धिक्कार करो, परन्तु वे यह न समझ लें कि यह हमारा निज का शत्रु है; क्योंकि उन की मित्रता की अपेक्षा शत्रुता अधिक हानिकारक होती है। अन्तर में सब के साथ पर्दा रख के कार्य्य करना, परन्तु प्रगट में खुली रीति से मिलना चाहिये, कारण कि अमिलनसारी के दिखलाव से हम लोगों की अप्रसन्नता के भागी होवेंगे व दिल खोल देने से बहुत हानि पहुंचेगी। इस विषय में मध्य गुणवाले थोड़े ही पुरुष होते हैं। बहुत से तो निर्जीव बातों में भी छिपे जाने योग्य गूढ़ और दिल-रखे होते, और बहुत से जो वे जानते हों, सब मूर्खता के साथ बक देते हैं।

कुलीनता।

कुलीनता की ठीक ठीक यथार्थ व्याख्या यह हुई है कि "अत्युत्तम समझ, श्रेष्ठ स्वभाव और कुछेक दूसरों के लिये अपनी इच्छा को रोकना कि हमारे लिये दूसरे भी ऐसा ही करें, इन सब गुणों का फल।"

उच्च संस्कार शीघ्र ही प्राप्त नहीं होते, और न बहुत से एक बार ग्रहण हो सकते हैं, अतएव इन को बचपन से ही प्राप्त करना चाहिये नहीं तो फिर सुगमता से नहीं प्राप्त हो सकेंगे। बाल्या-वस्था में एक बार ये संस्कार दृढ़ हो जावें, तो सदा के लिये बने रहते और प्रकृति में पड़ जाते हैं। हीरेसनामी पण्डित ने कहा है कि "युवा पुरुषों को बाल्यावस्था में सुस्वभाव व सुविचार बताना अति लाभकारी है"।

प्रथम हमारे सरल स्वभाव व सुशीलता को देख कर लोगों का प्रेम हमारे में उत्पन्न हो जाता है, बुद्धि की बूझ तो पीछे की जाती है। झुक कर सलाम करने या अन्य ऐसे ही शिष्टाचार में कुछ कुलीनता नहीं गिनी जाती ; परन्तु सरल, सभ्य और माननीय बर्त्ताव ही से कुल जाना जाता है।

बुद्धि के बिना भी बहुधा शिक्षा भ्रष्ट हो जाती है, क्योंकि अमुक काल में अमुक मनुष्य को एक बात प्रिय लगी, वही बात अन्य अवसर पर दूसरे को बुरी लगेगी। कुलीनता के कितने एक साधारण नियम है। जैसे कि किसी को 'जी,' 'साहिब,' 'महर्वान' या 'महाराज' आदि पदवी (जैसी की उचित हो) के बिना केवल 'हां' या 'नहीं' कह देना महा सभ्यता है। ऐसे ही कोई अपने को कुछ पूछे, उस पर ध्यान न दे कर सभ्यता के साथ उस का उत्तर न देना। इस से अपने साथ बात करने वाले को यह निश्चय हो जायगा कि यह मेरा तिरस्कार करता अथवा मुझ को उत्तर देने व लक्ष देने के योग्य नहीं समझता है।

उच्चकुल में शिक्षा पाया हुआ मनुष्य, जब उस के साथ कोई बातचीत करेगा, तो सभ्यता के साथ उत्तर देने में कभी न चूकेगा, कहीं जावेगा तो नीचे बैठेगा, जब कोई ऊपर बैठने को कहे तब अपने योग्य उचित स्थान में बैठ जावेगा, भोजन करने बैठेगा तो सब से पहले खाने नहीं लग जावेगा, धीरज के साथ सभ्यतापूर्वक भोजन कर के सब के साथ उठेगा, दूसरे खड़े हों तो आप बैठ नहीं जावेगा, और ये सब व्यवहार हसित मुख से करेगा, मुंह फुला कर या बिगाड़ कर ऐसा कभी न दर्शावेगा कि मानो अप्रसन्नता के साथ करने पड़ते हों।

सम्पूर्ण उत्तम संस्कारों के सञ्चय करने में जितनी कठिनाइयां होती है उन से बढ़ कर कठिनाइयां अन्य कार्य्य में

नहीं, इसी प्रकार ऐसे संस्कारों का ग्रहण करना जितना आवश्यक है उतना दूसरा आवश्यक कार्य्य नहीं। अतिशय नम्रता तथा अत्यन्त उद्धतपन, व बहुत लज्जा रखना उत्तम संस्कारों की गणना में नहीं। कभी २ थोड़ी दृढ़ता और गम्भीरता भी अवश्य चाहिये और नम्रता प्रकट करना तो योग्यता का लक्षण ही है।

विद्या और सद्गुणों में भी सुवर्ण के सदृश्य अपनी २ जात का बल होता है, परन्तु ओपि बिना बहुधा उन का तेज़ छिपा रहता है। जैसे सुवर्ण की अपेक्षा घिसे हुए पीतल को बहुत से लोग पसन्द करते है। फ्रान्सदेशनिवासी आनन्दमय, सरल, और विनय सहित गुणो से अपने कितनेक पाप छिपे रखते हैं।

लार्ड वेकन् नाम का महा विद्वान कहता है कि "जिस की मुखाकृति आनन्दमय होती, उस को हरेक स्थान मे आदर मिलता है,"। निश्चय कर के आनन्दमय मुख से हमारी योग्यता तुरन्त प्रकट होकर, यह जहां तहा हमारे मार्ग को सुगम बना देता है।

उच्चकुल के संस्कार वालों को दर्बारी रीति भांत से भी ज्ञात होना चाहिये। पृथक २ दर्बारों में राजा को मान देने के भिन्न २ प्रकार होते है, अतएव भूल और बेडौली दूर करने को प्रथम ही पूछ ताछ कर के उन का ज्ञान उपार्जन कर लेना उचित है। जैसे कि विएना मे लोग महाराज को सिर झुकाने के एवज़ उन को ताज़ीम करते, फ्रान्स में राजा को कोई सिर नहीं झुकाता, न उस का हाथ चूमता है, परन्तु स्पेन और इङ्गलिस्तान मे ऐसा करते हैं।

जो मनुष्य निश्चयपूर्वक ऐसा जानते हों कि अमुक हम से श्रेष्ठ है और फिर भी यथोचित उस का मान न करें, ऐसी न्यूनता वाले तो कम ही निकलेंगे। विवेकी व अनुभवी मनुष्य यथार्थ विचार करने पश्चात् सरल स्वाभाविक रीति से, किसी प्रकार का अन्तर दिखलाये बिना प्रत्येक कार्य्य करता है। सुसङ्गति में नहीं रहा हुआ मनुष्य, विवेक भी करे तो कुढंगा लगता, और देखनेवाले को प्रत्यक्ष हो जाता कि इस ने पहले कभी ऐसा न किया, अब बनावट करता है, व उस से कर्त्ता को बड़ी कठिनाई पड़ती। किसी मण्डली को उत्तम समझ कर हम उस मे जावें, फिर वहां आलस्य मोड़ना, ज़ोर से हंसना, कान कुचरना, या अन्य दुर्व्यसन प्रकट करना महा मूर्खता है। वहां जाकर, अन्य मनुष्य जिस प्रकार बैठते, उठते, बोलते होवें, वैसेही आतुर न होते हुए गम्भीरता के साथ प्रसन्न मुख से व्यवहार करना चाहिये।

मिश्र मण्डली में जहां जुदा जुदा मनुष्यों का समुदाय एकत्रित होवे, जिस किसी को आने की छुट्टी हो, उस समय वहां के अन्य लोगों के अनुसार उस का भी समान आदर का हक़ है, अतएव उस के साथ सभ्यता से बर्त्ताव करना चाहिये। वहां निर्बन्धनता पूर्वक हिरने फिरने बातचीत करने का कोई दोष नहीं, परन्तु असावधानी और भूल वहां कदापि नहीं चल सकती। कोई तुम को सलाम कर के तुम्हारे साथ निर्जीव मूर्खता भरी बातें करने लग जावे तथापि उस समय तो उस को यह लक्ष सर्वथा न होने देना चाहिये कि तुम उस को मूर्ख गिनते और उस की बात सुनने के योग्य नहीं समझते हो, ऐसा करने से अपना जङ्गलीपन सिद्ध होता है। विशेषतः स्त्रियों के साथ जो चाहे किसी दर्जे की हों, परन्तु लिङ्ग भेद से सदा समान आदर के योग्य है। एकत्रित सर्व मनुष्यों का

समान हक जिस वस्तु में हो, तुम अकेले उस को उपट नहीं सकते, जैसे कि कोई खाद्य पदार्थ वा उत्तम सुथरा बैठने का स्थान आदि। तुम्हें तो उलटा, उस वस्तु को आप ग्रहण न करते हुए, दूसरों को देने को चेष्टा करनी चाहिये; ऐसा करने से तुम्हारी हानि नहीं होगी, क्योंकि दूसरे भी तुम को देने की इच्छा करेंगे, और अन्त में तुम को अपना समान भाग मिले बिना नहीं रहेगा।

तीसरे प्रकार की सदृशिक्षा स्थल २ की भिन्न भिन्न होती है, परन्तु उन का आधार उपर्युक्त दो प्रकारों पर है। मूलतत्त्व ये दो है, उन में जैसी जहां की रीति भांति हो वह मिला लेना चाहिये। जो इन दो तत्त्वों को जानता है उस को तीसरी बात लक्ष देने और अवलोकन करने से सहज ध्यान में आ सकती है। यह कुलीनता की ज़िलह, चमक और सुधार है, अतएव बुद्धिमान मनुष्य जहां जावे वहां की रीति व्यवहार पर लक्ष रक्खे और सुशिक्षित, प्रचलित रीति के पूर्ण अनुभवी मनुष्यों की चाल चलन देख कर सीख ले इतनाही आवश्यक है। वह ध्यान में रक्खे कि उत्तमजन अपने से श्रेष्ठों के साथ किस आदर से बात करते, बराबरी वालों से कैसे बर्तते और नीचे दर्जे वालों से किस प्रकार का व्यवहार करते है। छोटी छोटी बातें भी छोड़ न देनी चाहियें, ये ऐसा काम देती है कि मानों चित्रकार के चित्र पर कारीगरी की अन्तिम क़लम फिरती हो। जैसे कि एक बेडौल चित्र पर चित्रकार को पूर्ण करते समय सम्भाल के साथ एक दो हाथ फेरने से उस का डौल बदल जाता, वैसेही सम्भाल रखने से मनुष्य की गणना मे भी रूपान्तर होजाता है, इस को सुधि बनाड़ी को नहीं, परीक्षक हो कारीगर की परीक्षा

करते हैं। यह पिण्ड की लावण्यता अति उपयोगी है। बुद्धिबल से किसी को कुछ समझाना चाहें, इस के पूर्व ही हमारे विचार सम्मुखवाले पुरुष के चित्त में इस लावण्यता कर के प्रविश हो जाते, और उस का मन हरण कर लिया जाता है अतएव यह मोहनी रूप है। इस का असर इतना आश्चर्यदायक है कि इस की गणना ईश्वरी गुण में की गई है।

सारांश कि मनुष्य जाति का प्रेम उपार्जन करने के लिये जैसे विद्या, प्रतिष्ठा और सद्‌गुणों की आवश्यकता है उसी प्रकार सभ्यता, सुशिक्षा और बातचीत और साधारण व्यवहार में सर्व प्रिय होने की भी अत्यावश्यकता है। संसार में सारे ही विशाल बुद्धि नहीं होते और अल्प बुद्धि लोग उत्तम धीमानों की बूझ भी नहीं कर सकते। परन्तु साधारण मनुष्य केवल बर्त्ताव, भलपन और प्रियभाषण पर ही परीक्षा करते हैं, कारण कि इन के उत्तम असर उन पर हो कर ये जनसमुदाय को प्रसन्न और सुखी बनाते हैं। इस विषय को समाप्त करते समय इतना और कहता हूं (जो निश्चय कर मानो) सुशिक्षा के बिना संपूर्ण श्रेष्ठ विद्या का समावेश अरोचक और अपमान दिलानेवाले पाण्डित्य में हो जाता है, और विद्या के बिना सुशिक्षा भी व्यर्थ है, क्योंकि विद्या से उस को दृढ आश्रय मिलता और उस से विद्या दीप्तिमान हो कर सर्वप्रिय हो जाती है। जिस मनुष्य को संपूर्ण रीति से सुशिक्षा न मिली हो वह सुसङ्ग में साथ होने योग्य नहीं और न उत्तम मनुष्य उस को अपनी पंक्ति में लेते हैं। जिस को शिक्षा सर्वथा मिली ही न होवे वह तो सङ्गति में बैठने और कार्य्यसम्बन्ध के वास्ते अतिही अयोग्य होता है।

अतएव अपने विचार और कार्य्य का उद्देश्य उच्च फल के संस्कार प्राप्त करने के ही होने चाहिये। जो मनुष्य अपनी सुशिक्षा के लिये प्रख्यात हुए हैं, उन के आचरण का अवलोकन कर के उन का अनुकरन करने पर ही सन्तुष्ट मत हो किन्तु आगे बढ़ने का यत्न करो कि अन्त में तुम उन की बराबरी कर सको। निश्चय जानो कि जैसे दान, धर्म अथवा दया का गुण धर्म सम्बन्धी सद्गुणों में श्रेष्ठ है वैसे ही सुशिक्षण की योग्यता व्यवहारिक अन्य योग्यताओं से अधिक उत्तम है। यह गुण हमारी अन्य योग्यताओं को कैसा दिप्यमान कर के हमारे कुलक्षणों को कैसे छिपा देता है।

भूषण अथवा लावण्यता।

शरीर की, मुख की और बोलने की रीति की लावण्यता अवश्य रखनी चाहिये। एक बात कोई सभ्य पुरुष मनोरञ्जक ढङ्ग से लावण्यता के साथ स्पष्ट रीति से कहे तो वह चित्त को प्रसन्न कर देगी और वही बात कोई असभ्य चिड़चिड़ा मनुष्य मुख बढा कर कहे, तो श्रोता को अरुचि होगी। कामदेव क स्त्री रति को भी कविजन उपर्युक्त तीन भूषणों युक्त गिनते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि इन के बिना सौन्दर्य्य भी निरर्थक है, सरस्वती को भी ये तीन भूषण चाहिये, बिना इन के अन्य आकर्षण विद्या में न्यूनही है।

समान योग्यता वाले पुरुषों में अमुक मनुष्य हम को विशेष प्रसन्न करके हमारा मन हर लेता है, इस का विचार हम सूक्ष्म दृष्टि से करै तो अनुभव में आजावेगा कि उस पुरुष में लावण्यता है और अन्य में नहीं।

मैं ने बहुधा देखा है कि मनोरञ्जक मुद्रा और सुन्दर शरीर वा अवयव सहित योग्य सौष्ठव वाली स्त्रियां किसी का मनरञ्जन नहीं कर सकती, परन्तु सामान्य अङ्ग सौष्ठव वाली वनिता घर भर को मोहित कर लेती है, अतएव निश्चय मानो कि जितनी शोभा रति के बिना लावण्यता देती है उतनी लावण्यता के बिना अकेली रति कदापि नहीं दे सकती। बहुधा कई एक उत्तम गुणी पुरुषों का उन में लावण्यता न होने से, अनादर और अपमान होता है; और क्षुद्र बुद्धि अल्पज्ञान, और मन्द योग्यता वाले पुरुष जिन में लावण्यता हो, मान व उत्तेजन पाते और उन की प्रशंसा होती है।

ये भूषण तथा लावण्यता क्या क्या हैं और किस रीति से सम्पादन करना चाहिये इस विषय में कुछ कहता हूं।

भाषण।

मनुष्य के ऐश्वर्य्य की सीमा बहुधा उस के प्रथम भाषण पर ही हुआ करती है। श्रोता का चित्त प्रसन्न हो ऐसा बोलने वाले मनुष्य में यदि गुण न होवे तो भी लोग तुरन्त अपनी इच्छा के उपरान्त ऐसा सङ्कल्प कर लेते है कि यह बहुगुणालङ्कृत है, और इस के विरुद्ध यदि उस का भाषण कठोर होवे तो लोग उस के विषय में अकस्मात् बुरे विचार बांधने लगजाते। और उस में वस्तुतः जो योग्यता होवे वह भी नहीं मानी जाती है। यूरप देश में यदि किसी कुलीन स्त्री के हाथ में से पंखा गिर जावे तो जैसे कोई हलका मनुष्य उस को उठा कर देगा उसी प्रकार सुशिक्षित गृहस्थ भी उठा देगा, परन्तु इस में बहुत अन्तर पड़ जावेगा—गृहस्थ पंखा देते समय लावण्यता की

वचन कह कर उस स्त्री को प्रसन्न कर देगा। और इसमें मनुष्य का अशिष्टता के साथ पंखा देना उल्टा उस के उपहास का कारण होवेगा। गृहस्थ का वर्ताव योग्यता सहित और उस की चाल ढाल गम्भीर होना चाहिये। जब वह किसी मण्डल में आवे तो अवश्य उस को अपना बोलचाल पर सम्भाल रख कर हलकाई के बिना मानवन्त, अतिशय मिलनसार होने के बिना सरल, बनावटी आकृति धारण किये बिना सभ्य और दृश्य प्रयत्न वा युक्ति किये बिना चित्ताकर्षक होना चाहिये। स्त्री और पुरुष दोनों, विशेषत: अपनी बुद्धि की अपेक्षा अपने हृदय पर आधार रख कर चलते हैं और हृदय का मार्ग इन्द्रिय द्वारा है अतएव उन के चक्षु और कर्ण को प्रसन्न करो इतने से आधा कार्य्य तो तुम्हारा सिद्ध हो चुका।

प्रसन्न करने की कला।

अति प्राचीन और सत्यजन श्रुति है कि जो राजा अपनी प्रजा के हृदय में राज्य करता है वह निर्भयता को लिये हुए स्वतन्त्रता के साथ राज्य कार्य्य चलाता है। सेना की अपेक्षा, लोगों के साथ की हुई उस की भलाई राज्य की अधिकतर रक्षा करती, और प्रजा के मन में भय के स्थानापन्न प्रीति होने से वह अधिक आज्ञा पालन करती है। यही प्रमाण कितनेक अंश में गृहस्थों से भी यथार्थ सम्बन्ध रखता है। जिस मनुष्य में, सब को प्रसन्न रखने और अपने साथ बातचीत करने का प्रेम सम्पादन करने की, बड़ी युक्ति होती वह अत्यन्त बलवान हो जाता जो बल दूसरे को प्राप्त नहीं होता है। इस बल से अनायास उस का उदय होना, उस को सहायता मिलती और उस का

नाश होना भी रुक जाता है। तुम्हारी वय के थोड़े ही युवा पुरुष मिलनसारी जैसे आवश्यक गुण का पूरा पूरा विचार करते हैं, परन्तु बड़े और विवेकी होने पर युवावस्था में खोये हुए उस गुण को पुनः सञ्चित करने का यत्न करते परन्तु फिर वह श्रम निष्फल जाता है। ऐसा उपयोगी साधन तीन मुख्य कारणों से वे नहीं प्राप्त कर सकते—एक गर्व, दूसरी प्रमत्तता और तीसरी अकारथ लज्जा।

प्रथम कारण की मुझे तुम्हारे विषय में शङ्का नहीं क्योंकि ऐसी तुच्छ बात तुम्हारे मन में आवेगी ही नहीं। स्थान स्वच्छ करने वाले सेवक अथवा जूता पहनाने वाले दास से तुम अपना स्वाभाविक रीति से श्रेष्ठ होना नहीं मान सकते और मुझे विश्वास है कि मानते भी न होगे; तथापि सम्पत्ति से जो अन्तर तुम्हारे हितकर पड़ा हुआ है उस को देख कर तुम्हारा आनन्दित होना निष्कारण नहीं कहा जाता। इन सर्व लाभों का सुख भोगो। परन्तु इन से जो विमुख हों उन का अपमान कभी मत करो, अथवा ऐसी कोई बात न करो जिस से उन को इस लाभ की न्यूनता याद आवे। मैं स्वयं, समानपद-वाले के साथ वर्त्तने में जितनी सम्भाल रखता हूं उस से अधिक अपने सेवक वा अपने से नीचे दर्जे वाले मनुष्यों के साथ बर्त्ताव करने में रखता हूं, केवल इसी भय से कि अयोग्य रीति से डाला हुआ सम्पत्ति का अन्तर दूसरे मनुष्यों को जतलाने की मेरी इच्छा है, ऐसे मेरे दुष्ट और हलके विचार होने का सन्देह वे मेरे पर न ले आवें। युवा पुरुष इस विषय पर पूरा ध्यान नहीं देते परन्तु मिथ्या कल्पना करते है कि आज्ञा करने की ढब और अधिकारदर्शक स्वर का उपयोग करना ही सामर्थ्य और पुरुषार्थ के चिन्ह हैं।

दूसरों की बात पर उचित लक्ष न देने से हम सदा गर्विष्ठ और औरों का तिरस्कार करने वाले गिने जाते है और जहां एकवार इस गिनती में आये कि फिर क्षमा नहीं मिल सकती। इस विषय में जवान मनुष्यों को सामान्य रीति से अतिशय शिक्षा करने को हूं कारण कि ऐसा करना सम्मुख वाले मनुष्य को बहुत क्रोध उत्पन्न कराता है। अपनी पहचान वालों अमुक मण्डली के साथ और बुद्धि से पुर सुन्दर तथा पदवी वाली तेजस्वी और वड़प्पन को पहुंची हुई कितनीक वस्तुओं से उन का सर्व लक्ष ग्रहित होता है और दूसरे सब हमारे दृष्टिपात के भी योग्य नहीं, ऐसा उन का विचार होने से औरों को साधारण सभ्यता बतलाना भूल जाते है। मै भी जब तुम्हारी अवस्था का था तब अन्य अवगुणों के साथ एक यह भी दोष मुझ में था जो तुम्हारे सामने मै प्रत्यक्ष रीति से स्वीकार करता हूं। कुछ राजकीय मनुष्यों की मण्डली से मोहित हो कर उन को प्रसन्न रखने के लिये में बड़ी सावधानी रखता, इस से अन्य प्रत्येक वस्तु को तुच्छ और साधारण सभ्यता को अनुचित गिनता था। प्रधान विद्वान्, सुन्दर स्त्री और प्रसिद्ध व नामाङ्कित मनुष्यों का मै सम्पूर्ण तत्परता और चतुराई के साथ सत्कार करता; परन्तु अपने अतिशय अविवेक और मूर्खता को लिये हुए मै ने कभी अन्य लोगों को कुछ परवाह न की, इस लिये वे मुझ से अप्रसन्न हो गये। इस तरह अपनी मूर्खता से मै ने सहस्रों स्त्री पुरुषों को अपना शत्रु बना लिया। तब तो मै ने उन का कुछ माल नहीं गिना, परन्तु जब मुझे उन को आवश्यकता हुई तब वे मुझे दुःखी करने के मुख्य साधन बन गये। यद्यपि यह सब केवल मेरी मूर्खता से हुआ था, तथापि लोगों के विचार मे

तो यही आया कि मैं गर्विष्ठ हूं। साधारण पक्ष से कुरूप स्त्रियों और मध्यम पंक्ति के पुरुषों का मैं ने नादानी के साथ तिरस्कार सहित बर्त्ताव कर के शत्रु बनाया है, उन को सामान्य सहज सभ्यता और लक्ष दिखला कर तुम मित्र बना लोगे।

यह सत्य है कि ऐसा कार्य बहुधा अति अरोचक होता तथा आलसी व निरुत्साही पुरुष और वृद्ध और कुरूप स्त्रियों को ओर कोई २ कुछ अप्रसन्नता के साथ ध्यान देता है, परन्तु लोकमात्र की प्रीति सम्पादन करने के हेतु इतना सा परिश्रम उठाना कुछ भी नहीं है। अतएव अधिक श्रम कर के भी उपर्युक्त बातों की प्राप्ति करना अत्यावश्यक है।

अब एक मंत्र और सुना कर इस विषय को समाप्त करता हूं कि जिन स्त्री पुरुषों से तुम को काम पड़ता हो, या पड़ने की सम्भावना हो उन को अमुक तत्परता और अमृत वचन के साथ अपने बना लो और सामान्य सभ्यता और लक्ष प्रकट कर के प्रत्येक को ऐसे प्रसन्न रक्खो कि यदि वे अन्तःकरण से तुम को न चाहे तथापि तुम्हारे लिये अच्छा तो कहे, अथवा अन्त में इतना तो हो कि कुछ बुरा भला न कहते केवल चुप हो रहे।

अकारथ लज्जा से युवापुरुषों की इतनी ही हानि नहीं होती कि उन के बहुत से मित्र न होवें, परन्तु कई शत्रु उत्पन्न हो जाते है। वे जानते है कि अमुक बात करना ठीक है परन्तु लज्जा वश हो कर उसे नहीं करते और यदि यह डर न होता कि कोई गृहस्थ या स्त्री हमारी मसखरी करेगी, तो उसे कर भी लेते। मेरे भी ऐसा सयोग हुआ था। जब मैं अपने विचार के अनुकूल शिष्ट मण्डली में होऊं, तब कोई हलका मनुष्य मुझे न मिले और न मुझ से बात करे; ऐसी इच्छा अक्सर रखता;

यद्यपि संयोग से किसी ऐसे मनुष्य ने कुछ पूछ लिया तो इस लज्जा से कि "मेरी मसख़री होगी" उन हलके मनुष्यों को ऐसे कुढंग से उत्तर दिया कि वे अप्रसन्न हो गये। उस समय इतना विचार न किया कि अभी ऐसा न करने से जो लोग मेरी हसी करते हैं वे ही पीछे मेरा आदर करेंगे।

जो बात तुम्हारी आत्मा में सत्य प्रतीत हो उस को अथवा तुम्हारी अपेक्षा विशेष अनुभवी और प्रख्यात सदाचारी और सुबुद्धि पुरुषों को जो कुछ करते देखो उस को करने में भय और लज्जा रखने के बिना सदा तत्पर रहो। इतना कहने पर अन्त में कदाचित् तुम ऐसा कहो कि प्रत्येक मनुष्य को प्रसन्न रखने का कार्य्य अशक्य है, तो इस को मैं भी स्वीकार करता हूं परन्तु यह न समझना चाहिये कि जहां तक हो सके उतने जनों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न ही न करना। नहीं। मैं अधिकतर यह भी स्वीकार करता हूं कि किसी मनुष्य के थोड़े भी शत्रु न हों ऐसा होना अशक्य है; परन्तु अपने दीर्घ अनुभव से यह सत्य२ कहता हूं कि महाबलवान वही मनुष्य होता है जिस के मित्र बहुत और शत्रु थोड़े हों। ऐसा मनुष्य शनैः शनैः बहुत उच्चस्थिति को प्राप्त हो जाता और जो पड़ती आवे तो बहुत धीरे धीरे पदच्युत होता और सब को उस पर दया उत्पन्न होती है यह बात निश्चय तुम्हारे करने योग्य ही है अतएव जैसे मैं ने कहा उसी को प्रमाण करना चाहिये। एक और बात और उस को दृढ़ करने को दो उदाहरण दे कर इस विषय को समाप्त करता हूं।

परलोकवासी आर्मण्ड का ड्यूक इस राज्य में महा निर्बल मनुष्य था परन्तु साथ ही वह सयाना और मिलनसार था। अपने सरल मृदुस्वभाव और राज्यदर्बार तथा सैनिक स्थानों

सम्बन्धी अपनी उपार्जन की हुई सुशिक्षा से उस में सच्ची सुजनता, मनहरण करने की रीति और युक्ति सहित लक्ष देने की प्रकृति ऐसी आपड़ी थी कि इन गुणों कर के उस की बुद्धि में जो अपूर्णता थी वह दब गई, वह कुछ बुद्धिमान नहीं था केवल इन्हीं गुणों से लोग उस के साथ प्रीति करते थे, तथापि उस को कुछ इन का अभिमान न था। ऐन नाम की महाराणी की मृत्यु होने के पीछे उस पर एक कलङ्क लगाया गया जिस की रीत्यनुसार परीक्षा करनी अवश्य थी, कारण कि जिन जिन लोगों को अपराधी ठहराना था उन के साथ काम करने में यह भी था, उस काल में अत्यन्त पक्षापक्ष रहते भी उस को बिगाड़ने के अभिप्राय रहित उस पर दोषारोप किया गया था। अन्य मनुष्यों के दोषों के प्रश्न प्रजा गृह के जितने सभासदों ने स्वीकार किये उन की अपेक्षा बहुत थोड़ों ने इस ड्यूक का दोष स्वीकृत करने में सम्मति दी थी। सेक्रेटरी आफस्टेट मिस्टर स्टानहोप ने इस ड्यूक पर दोषारोप किया था। दूसरे दिन पादशाह के सम्मुख ड्यूक को खड़ा करने को थे कि मिस्टर स्टानहोप ने झटपट पादशाह को समझा कर उस को कुछ ताड़ना करनी ठहरा दी। रोचेस्टर के बड़े पादड़ी आटरबरी ने जाना कि ड्यूक के न होने से जैकोबाइट् पक्ष मे हानि होगी, अतएव उस ने तत्काल जा कर इस दीन हीन बुद्धि ड्यूक को पलायन कर जाने को समझाया और विश्वास पूर्वक कहा कि वे तुम को केवल तिरस्कार कर के अपमान भरी हुई तावअ्दारी में डालना चाहते हैं, जिस से क्षमा मिलनी नहीं। जब इस के ऊपर मृत्युदण्ड का अन्तिम वारन्टजारी हुआ तब लोगों के चित्त व्याकुल हो कर नगर में घबराहट मच गई। संसार मे कोई उस का शत्रु

न था परन्तु मित्र सहस्त्रों थे, इस के मुख्य कारण प्रत्येक को प्रसन्न रखने की इस की स्वाभाविक वासना और अपनी बुद्धि से नहीं किन्तु सुशिक्षा से उपार्जन किये हुए साधन थे।

दूसरा उदाहरण मार्लबरा के परलोक वासी ड्यूक का है। प्रसन्न करने की कला की आवश्यकता को वह खूब जानता था इसलिये उस ने भले प्रकार इसको सम्पादन की थी। किसी मनुष्य ने इस कला के उपयोग से लाभ उठाया होगा तो उस ड्यूक से कम। वह जिस को चाहता अपना बनालेता और यह समझता था कि हरेक को अपनाने में न्यूनाधिक लाभ ही है इसलिये इस में लीन रहता। प्रधान अथवा बड़े सर्दार के पद प्राप्ति की सत्ता से विरुद्ध पक्ष वाले तथा अन्य बहुत से दर्बारी लोग उस के शत्रु हो गये थे, परन्तु उसका ज़ाती शत्रु कोई भी न था और जिन्हों ने प्रसन्नता के साथ ड्यूक को निकाल दिया होता, उसका अपमान किया होता और कदाचित् उसे दोषी ठहराया ये वेही लोग थे,जो सायही मिस्टर चर्चिल को चाहते थे,जिसका ज़ाती चाल चलन सारे दुर्गुणों से अत्यन्त घृणित और नीच, अति लोभ,जैसे दुर्गुण से लाञ्छन युक्त था। इस ड्यूक ने लोगों को प्रसन्न करने और उन का मन हरने में अपनी सम्पूर्ण बुद्धि का उपयोग किया था। उस के चिहरे पर अनुपम मिठास और कोमलता, बोलने की रीति में लावण्यता और हलन चलनादि क्रिया में बड़प्पन के चिन्ह पाये जाते और अत्यन्त हलकी बात पर भी एकसा सूक्ष्म ध्यान देना अति क्षुद्र मनुष्य को भी प्रसन्न कर देता था,यही कला वह खूब जानता और उन से लाभ उठाता था, क्योंकि अन्तर में राज्य लोभ वाला, गर्विष्ठऔर महालालची पुरुष इसके ऐसा कोई और न था।

चित्तविनोद का चुनना।

सज्जन मनुष्य सदा अपने चित्तविनोद के वरण करने में ध्यान देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि साधारण मन बहलाव के ग्रहण करने में हलके पन की छाप लग जावेगी। वादित्र बजाने में सज्जनों की शोभा नहीं। यद्यपि गायन उच्च कलाओं में से एक श्रेष्ठ कला गिनी जाती है और यह ठीक भी है, तथापि सुशील मनुष्य गाने बजाने वाली मण्डली के साथ बांसुरी या सारङ्गी बजाने लगजावे तो वह हलका कहलाता है। यदि तुमको राग का शौक़ है तो सुनो, तब कारियों को द्रव्य देकर उन से तंत्र बजवाओ, परन्तु आपही सारङ्गी लेकर बजाने मत बैठ जाओ इस से श्रेष्ठ भी हलका और तिरस्कार का पात्र बन जाता है, और बहुधा कुसङ्ग में पड़कर अन्यान्य उत्तम रीतियो से उपयोग में आने वाले बहुमूल्य समय को वृथा व्यय करता है।

बातचीत।

जैसी सुघड़ता से पुर बातचीत विवेक युक्त मण्डली में होती हो वैसी सीखना चाहिये, यद्यपि यह शिक्षा निर्जीव जान पड़ेगी तथापि मित्र मण्डली और भोजन पंक्तियो मे यह अत्युपयोगी है। वार्त्तालाप मे अन्य देशी राजदर्बारो का विषय भी छिड़ जाता है, बहुधा भिन्न२ राजाओ की सैन्य संख्या, उसकी उत्तमता वा अनुत्तमता, कवायद, लिबास आदि का भी प्रसंग चल पड़ता है; कभी राजा या बड़े आदमियों के कुटुम्ब, लग्न और उन के सम्बन्धियो की चर्चा निकलती है; और कभी प्रकट रागरंग, नाच स्वाग आदि के महत्त्व के विषय छिड़ जाते है। ऐसे काल में

भोजन के उत्तम पदार्थों को किस रीति से सराहना यह भी जानना चाहिये। यह सत्य है कि ये विषय बहुत छोटे है परन्तु कभी २ छोटी वस्तुओं की भी बड़ी आवश्यकता होती है।

स्वच्छता।

सब को उचित है कि अपना अङ्ग स्वच्छ रक्खें, और विशेष कर हस्त, दन्त और नखादि अवयव। मुख गन्दा रखने से दुष्ट परिणाम निपजते अर्थात् दान्तों की व्याधि और अति दुर्बास आने से पास बैठने वालों को घृणा उत्पन्न होती है। मैले हाथ और लम्बे मैल भरे हुए नख रखना अत्यन्त ही घृणित है अतएव नखों को बढ़ने मत दो। नाक कान में उंगलियां कभी मत डालो, कारण कि मण्डली में ऐसी क्रिया करना हल्के और गन्देपन का चिन्ह है। प्रतिदिन प्रभात में कानों को साफ धोडालो और नाक साफ करने पश्चात् रूमाल फैला कर कभी मत देखो।

यद्यपि ये बातें शिक्षा करने योग्य नहीं प्रतीत होंगी, परन्तु जब देखा जाता है कि हरेक के अनुभव में आने वाली, वर्णन न हो सके ऐसी सहस्रों छोटी छोटी २ निर्नाम बातों का समूह प्रसन्न करने की कला का एक महान विषय बन जाता है तो उन छोटी बातों को तुच्छ न गिनना चाहिये। इस के अतिरिक्त स्वच्छ अङ्ग और स्वच्छ वस्त्र आरोग्यता के लिये जितने आवश्यक, उतने ही दूसरों की अरुचि हटाने को भी उपयोगी है। जो मनुष्य उपर्युक्त कथन में २० वर्ष की अवस्था मे प्रमाद करता, वह ४० वर्ष में गन्दा और ५० मे तो असह्य गन्दा हो जाता है,

ऐसा सदा नियम होता और मैं भी अपने अनुभव से कहता हूं कि यह सर्वथा सत्य है।

आदरमान।

सुशील गृहस्थों को, अपने से उच्च, समान, या उतरते दर्जे वाले मनुष्यों का शोक व हर्ष में आदर मान करते सुनो उस पर लक्ष दो; और ध्यान में रक्खो कि उस समय वे अपना स्वर और मुख मुद्रा किस प्रकार से रखते हैं, कारण कि इस से श्रोता प्रसन्न होते है। सुघड़ मनुष्य के बोलने में कुछ अन्तर होता है, साधारण मनुष्य लट्ठपन के साथ और सुघड़ मनुष्य अवसर के अनुसार आकृति बना कर सरलता से बात कहेगा किसी नव निवाहित मनुष्य को अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिये प्रसन्न मुख हो कर मिलता हुआ कहेगा :—"वाह! कितने आनन्द की बात है, मेरे चित्त में हर्ष नहीं समाता, धन्य घड़ी, धन्य दिवस; इस आनन्द को कह जताने की अपेक्षा मेरे चिहरे से अनुमान कर लीजिये कि मुझ को कितना हर्ष है" इत्यादि। कोई शोक में हो तो पास जा कर उदासीन मुख के साथ धीमेस्वर से कहेगा कि "मैं यह सुनने से बड़ा शोकातुर हुआ, कुछ उपाय नहीं परन्तु स्नेहियों को शोक होता ही है" आदि।

वाणी।

चाहे वह किसी भाषा में बोले, परन्तु प्रत्येक गृहस्थ की वाणी विवेक युक्त होनी चाहिये। फ्रान्स देश निवासी इस में बड़ी सावधानी रखते और सुन्दर वाणी ही से तो विवेकी और सुसङ्गी मनुष्य की परीक्षा होती है।

वस्त्र ।

प्रसन्न करने की कला सम्पादन करने के अनेक साधनों में से वस्त्र भी एक मुख्य साधन है अतएव इस पर लक्ष देना उचित है ; कारण कि मनुष्य की पोशाक पर उस की चाल चलन और समझ का अनुसन्धान किया जाता है। पोशाक में जितना ढोंग करे उतनी ही समझ में न्यूनता जाननी चाहिये। बुद्धिमान ऐसी वैसी छटा नहीं बनाता केवल अपने ही लिये स्वच्छ रहता है और दूसरे तो लोगों को दिखलाने के लिये ऐसा करते है। जहां हम निवास करते हैं, वहां के बुद्धिमान सुघड़ गृहस्थ जैसी पोशाक पहनते हों उसी ढंग पर हमें को भी पहनना चाहिये। यदि उन से अधिक चटक मटक करेंगे तो छैलापन व घटियल रहेंगे तो क्षुद्र समझे जावेंगे। हां। जवान मनुष्य अपनी पोशाक में कुछ टीप टाप करे तो कुछ हानि नहीं क्योंकि अवस्था व विचार आने पर वह आप ही घट जावेगी।

साधारण मनुष्य और छैले की पोशाक में इतनाही अन्तर है कि छैला अपने वस्त्रों पर अपना मूल्य प्रकट करता। बुद्धिमान इस पर हंसते है, ऐसी मूर्खता से भरी हुई सहस्त्रों रीतिया है परन्तु उन में कोई दोष न होने से बुद्धिमानों को भी उन के अनुसार वर्त्तने में कुछ हानि नहीं। पुरुष के षी डाइयो-जीनस की ऐसी रीतियो को धिक्कारने से चतुरता, परन्तु उस धिक्कार को प्रकट करना महा मूर्खता थी।

पोशाक पहनने में छैलों को समानता वा उन से अधिकता प्रकट करने में हमें यत्न न करना, परन्तु हंसी न होवे और विलक्षणता न दीखे, ऐसे वस्त्र धारण करना उचित है। हमारे

सहनिवासी, समान वय वाले विचारवान पुरुष जैसे वस्त्र पहनते हों और वह न तो अति अव्य वस्थित और न टीप टाप वाले कहे जाते हों, तदनुसार पोशाक पहनने का सदा ध्यान रखना चाहिये ।

एक बार वस्त्र सज लिये फिर उन में विशेष लक्ष न रखना और कहीं वस्त्र अव्यवस्थित न हो जावें—ऐसा भय रखने के बिना मानो पोशाक पहनीही न होवे इस प्रकार स्वाभाविक-पन के साथ स्वस्थ चित्त रहना चाहिये ।

विश्वास ।

निरन्तर (अपने में) विश्वास रखने को निर्लज्जता कहना अयोग्य है । मेरा मत यह है कि इस में निर्लज्जता नहीं, किन्तु इस के विरुद्ध प्रत्येक मण्डली में कोई मनुष्य इस को शान्ति और निस्पृहता के साथ उपयोग मे लावे तो यह उस को अमित लाभ पहुंचाने वाला और बड़े काम का है । मुझ को पूर्ण विश्वास है कि यदि उपर्युक्त कथनानुसार वर्त्ताव न किया जावे तो व्यवहार का चलना कठिन हो जावे । जो कार्य्य चिन्ता और घबराहट के साथ किया जाता वह कभी सन्तोषदायक नहीं होता है ।

शान्ति और निस्पृहता के बिना किसी मण्डली में मान मिलना अथवा उत्तम कहलाना अशक्य है । प्रकट नम्रता के साथ आत्म-विश्वास और निर्भयता होवे तो अपनी योग्यता प्रकट होने मे कोई विघ्न न पड़ेगा और ऐसा न होते सीधे चलने पर भी बहुत से क्लेश उत्पन्न हो जावेंगे । निरी निर्लज्जता,मनुष्य का निर्बुद्धिपन और निरुपयोगी होना प्रकट करती है ।

व्याकुलता।

बुद्धिमान मनुष्य कोई कार्य्य शीघ्रता से करेगा परन्तु आकुलता से नहीं, क्योंकि वह समझता है कि आकुलता के साथ किया हुआ कार्य्य उलटा अधिक बिगड़ता है संकुचित हृदय-वाले मनुष्यों के पास जब कोई काम आता है तो विशेष कर उन को भार सा दीख पड़ता, जिस से वे आकुल व्याकुल हो कर इधर उधर दौड़ते, और घबराते हैं वे चाहते हैं कि सारे काम एकदम से कर लेवें परन्तु होता एक भी नहीं। बुद्धिमान, ग्रहण किये हुए कार्य्य को अच्छे प्रकार से पूर्ण करने मे उचित समय खर्च करता और उस में तत्पर रहने से कार्य्य के निकास में उस को खरा जान पड़ती है। शान्त और समान रीति से लगा रह कर उस कार्य्य को पूर्ण करके वह दूसरा काम हाथ में लेता है।

खिलखिला कर हंसना।

बात बात पर खिलखिलाना भी मूर्खता और अशिष्टता का चिन्ह है। नादानी की बातो से प्रसन्नता प्रकट करने के लिये खिलखिल हंसने की लोक में प्रथा है और इस में आनन्द माना जाता है, परन्तु मेरे विचार में इतना ज़ोर से हंसना कि लोक सुन लेवें, इस से बढ़ कर बुरा और तुच्छ आचार दूसरा नहीं। सच्ची दानाई और बुद्धियुक्त बात पर कभी कोई नहीं खिलखिलाता परन्तु वह मन को रञ्ज न करती और बदन पर प्रसन्नता छा देती है और ओछी ठट्ठे मसखरी की बातों में ज़ोर से हंसी आती, जिन से बुद्धिमान और कुलीन सदा दूर रहते हैं। कोई मनुष्य यह जान कर कि मेरे पीछे कुर्सी

धरी हुई है—बैठना चाहे और कुर्सी न होने से वह पृथ्वी पर गिर पड़े तो सारी मण्डली हंस पड़ेगी, परन्तु बुद्धिमान ऐसा नहीं करेगा, इस से स्पष्ट है कि खिलखिला कर हंसना कितना हलकापन और अनुचित है, इस से उत्पन्न होनेवाली अरोचक कलकल और विनोत्पादक मुखमुद्रा का वर्णन करना व्यर्थ है। बहुत से मनुष्यों को बात करने के साथ हंसने की प्रकृति पड़ जाती है। मैं ने देखा है कि बड़े २ बुद्धिमान मनुष्य साधारण बातचीत में भी हंसे विना नहीं रह सकते अतएव जो उन से अनभिज्ञ हैं वे तो यही समझेंगे कि ये निरे मूर्ख हैं।

पत्रलिखना।

उत्तम रीति से पत्र लिखना बड़ा लाभदायक है, क्योंकि कार्य्य सम्बन्धी तथा कुशलसमाचार के पत्र लिखने में इस गुण की सदा आवश्यकता रहती है। वर्ण विवर्ण या इबारत अशुद्ध न होना चाहिये। स्त्रियों की तो ऐसी भूल विचार में नहीं आती परन्तु पुरुषों को क्षमा नहीं मिल सकती है। अच्छे पत्र कैसे लिखे जाते है इस को बतलाने के लिये "सिसरो" लिखित पत्र अच्छे नमूने है। पत्र की इबारत सरल और स्वाभाविक हो और ठीक उतनी ही लिखी जावे जितनी कि उस पुरुष के हमारे सम्मुख होने पर हम उसे कहते।

सिसरो, कार्डिनल्डिओजाट, मैडमसिविनी और कौमृ-व्यूजीरानटीन ये चारों मनुष्य पत्र लिखने में उत्कृष्ट गिने जाते है। सिसरो ने एटीकस तथा अपने अन्य प्रिय मित्रो को जो पत्र लिखे है वे मित्रता व मिलनसारी के तर्ज के उमदा नमूने हैं; कार्य्य सम्बन्धी पत्र लिखने की रीति कार्डिनल्डिओजाट के सादे और उत्तम ढंग से जानी जाती है; आनन्द और रञ्जकता

से भरे हुए पत्रों के लिये कौन्टव्यूजी और मैडमसिविनी की बराबरी कोई नहीं कर सकता। वे इस स्वाभाविक रीति से लिखे हुए हैं कि पत्र होने पर भी मानो दो बुद्धिमान मनुष्य परस्पर वार्त्तालाप करते हों ऐसा जान पड़ता है।

पत्र के मोड़ने मीड़ने और सरनामा देने में सफाई रक्खो, और उस के बाहरी दिखाव पर भी प्रसन्नता अप्रसन्नता का कुछ आधार रहे अतएव इस में भी सम्भाल रखना चाहिये।

निन्दानाम।

संसार में प्रथम ही प्रवेश करते समय जवान पुरुषों को अपनी कोई चिढ़ पड़ जाने की सम्भाल रखना, और इस से बचने का सदा प्रयत्न करना उचित है। ऐसा होने से विचारशील पुरुषों की दृष्टि में वह हलका नज़र आवेगा और अन्य लोगों में उस चिढ़ के कारण उस की दुर्दशा होगी। तुच्छ निन्दानाम से बहुतों का बिगाड़ हुआ है। बड़े आदमियों की रीति भांति, उच्चार, दिखाव और बोलचाल में थोड़ा सा भी दोष होना उन के निन्दानाम का कारण हो जाता और उस के द्वारा कल्पना से बढ़ कर हानि पहुंचती है अतएव यदि ऐसी छोटी २ ऐबें तुम्हारे में हों तो उन को सुधार लो कि फिर कोई तुम्हारी चिढ़ न निकाल सके।

बातचीत करने में उच्चारण।

मनोहर उच्चारण सीखने के लिये प्रति दिन अपने मित्रों के आगे ज़ोर ज़ोर से बांचो और उन से यह प्रार्थना करो कि "जब हम अति शीघ्रता से पढ़ें, यथोचित विश्राम न लेवें, जहां न चाहिये उस स्थान पर विशेष ज़ोर देवें और शब्दों का अस्पष्ट

उच्चारण करें तो आप हम को तत्काल टोक कर हमारे दोष सुधारते रहिये।" इस के अतिरिक्त अपने आप और से बांच कर अपने कर्णों को प्रिय लगे ऐसा उच्चारण करो, बांचने या बोलने के समय दांत न दीखें इस की सावधानी रक्खो और प्रत्येक शब्द का उच्चारण स्पष्ट जुदा २ करने को शब्द के अन्तिम अक्षर का उच्चारण अवश्य करो। स्थल स्थल पर प्रकरणानुसार पृथक् २ स्वर बदलना अवश्य सीखना चाहिये। एक ही स्वर से बोलना बांचना न चाहिये। इन बातों पर सदा ध्यान देते रहने से थोड़े ही काल में ये सहज मालूम देंगी और फिर प्रकृति पड़ जावेगी।

बोलने की रीति और स्वर में भी असावधानी न करो। कोई २ मनुष्य बोलते समय मुख बन्द कर के कुनकुनाते हैं, उन की बात समझ में नहीं आती; कोई २ ऐसी जल्दी के साथ थूक उड़ाते हुए बोलते हैं कि उन का समझना भी कठिन होता है, कोई २ ऐसे ज़ोर से बोलते हैं कि मानो बहरे मनुष्य के साथ बातचीत करते हों; और कोई २ इतना धीमे बोलते हैं कि कोई सुन ही नहीं सकता। ये सब कुस्वभाव, दूषित और कुढंगे हैं जो ध्यान रखने से मिट सकते है। जिन की शिक्षा यथोचित न हुई हो ऐसे साधारण मनुष्यों मे ये लक्षण पाये जाते है। तुम नहीं जान सकते कि ऐसी छोटी २ बातो पर लक्ष देने की कितनी आवश्यकता है; बडे बड़े बुद्धिमानों में इन बातों के न होने से उन का अपमान होता और जिन में अधिक समझ नहीं, परन्तु ऐसी बातों में प्रवीण है, उन को मान मिलता हुआ मै ने देखा है।

लिखने की पद्धति।

लिखने की पद्धति विचार की शोभा अथवा उन का अलङ्कार

है। तुम्हारे विचार कितने ही उत्तम हों परन्तु यदि भाषा कुढंगी कठोर और हलकी है तो उन का तिरस्कार ही होगा। जैसे कि सुन्दर शरीर का मैले कुचैले विथड़े पहनने से होता है। सार या अर्थ पर सब का ध्यान नहीं जाता परन्तु भाषा पर न्यूनाधिक विचार सब का बन्धता है।

तुम चाहे जिस भाषा में लिखो या बोलो परन्तु अपने शब्दों पर ध्यान रख कर शुद्धता और सुन्दरता की प्रकृति धारण करो, यहां तक कि अति ही छुट के साथ बातचीत करने व साधारण पत्र लिखने में भी अपने बोलने लिखने के ढब पर विचार रक्खो। कहने के पूर्व कुछ न बने तो पीछे ही विचार करना चाहिये कि यदि हम इस से अधिक सरस कहना चाहें तो कह सकते हैं या नहीं।

लिखना।

जो मनुष्य अपनी आंख से देख सकता वो अपने दाहिने हाथ का उपयोग कर सकता है वह अपने इच्छानुसार अक्षर लिखने में शक्तिवान है। नूतन विद्यार्थियों के तुल्य कच्चे अक्षर लिखना बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता; इस से मेरा यह अभिप्राय नहीं कि लेखक के तुल्य पक्के शोभित अक्षर लिखो, परन्तु स्पष्ट पढ़ा जा सके ऐसे सुन्दर अक्षर शीघ्रता से लिखना सीखो। व्याकरण पर लक्ष रखने से शुद्ध और उत्तम ग्रन्थकारों के लेख पर ध्यान देने से सुन्दर लिखना आता है। पत्र लिखने की पद्धति सरल व स्वाभाविक होनी चाहिये और ऐसा लिखा जावे कि मानो जिस के नाम हम ने पत्र लिखा है वह हमारे सम्मुख हो और हम उस से बातें कर रहे हों।

हलके वचन ।

भाषा में हलके वचन भी न आना चाहिये। इस से हमारी प्रकृति और शिक्षा की परीक्षा हो सकती है। जनश्रुतियां और क्षुद्र वाक्य हलके मनुष्यों के लेख में बहुधा होते हैं। यदि यह कहा जावे कि प्रत्येक की रुचि भिन्न २ होती है तो यह भी जानो कि जो एक को रोचक हो वही दूसरे को अरोचक होता है। जहां तक हो सके कठिन शब्दों का प्रयोग कभी मत करो, परन्तु शुद्ध रीति से व्याकरण के नियमानुसार उत्तम मण्डलो में प्रचलित हो वैसी भाषा लिखने का अभ्यास करो।

सामान्य कुचालों से बचने की चितौनी।

मन में गुनगुनाना, उंगलियां चटकाना, पांव पीटना और ऐसी अन्य गंवारपन की चालें उत्तम रीति भांति में नहीं गिनी जाती हैं। इस से लोगों को अनुमान होता है कि हम अपने पास बैठे हुए पुरुष स्त्रियों की परवाह नहीं करते। बस ऐसी कुटेवों को छोड़ देना चाहिये। अति शीघ्रता से वा अत्यन्त धीरे धीरे भोजन करना भी एक हलकेपन का चिन्ह है। शीघ्रता से खाने में ऐसा अनुमान होगा कि हम दरिद्री हैं और धीरे २ खाने से जाना जावेगा कि खिलाने वाले का भोजन हमारी रुचि के अनुसार नहीं है। मुख में धरने के पहले किसी खाद्य पदार्थ को सूंघना न चाहिये, थाल में आई हुई कोई वस्तु रुचिकर न होवे तो उस को रहने दो, परन्तु सूंघने वा देख भाल करने से अपने मित्र के मन मे यह शङ्का मत उत्पन्न होने दो कि उस ने तुम को अरोचक आहार दिया है।

बिछौने पर या भूमि पर थूकने की आदत अतिही गन्दी है। इस से बारम्बार बिछौना बदलना पड़ता और परिचित जन ऐसा अनुमान करते हैं कि हम को ऐसा सामान उपभोग के वास्ते मिला ही नहीं है। अस्तु और किसी कारण के लिये नहीं तो ऐसा ही जान कर उच्च शिक्षा पाये हुए लोगों को हर जगह थूकने का स्वभाव छोड़ देना चाहिये। मार्ग में उतावल के साथ चलना भी हलकापन है। व्योपारी ऐसा करे तो चिन्ता नहीं परन्तु विवेकी ग्टहस्थ को यह शोभा नहीं देता।

कोई मनुष्य अपरिचित्य मिल जावे तो एकटक उस के मुख की ओर देखना भी तुच्छ काम गिना जाता है, क्योंकि शायद उस को यह सन्देह हो कि इस ने मेरे चिहरे पर कुछ विचित्र दर्शाव देखा है अतएव ऐसा करना उस का प्रकट रूप से अपमान करना है।

इसी प्रकार खरोंचना, खुजलाना, मुखनासिका और कान में उंगली डालना, जीभ निकालना, नखों को दांत से काटना, हाथ मलना, जोर से श्वास छोड़ना, शरीर ऐंठना जम्भाई लेते हुए मुख फाड़ना आदि अन्य बहुत सी कुटेवों से बचना चाहिये। ये सब साधारण मनुष्य के स्वभाव के अनुकरण हैं जो सद्गृहस्थों को दूषित बनाते हैं।

जगत् का ज्ञान।

युवावस्था में ज्ञान का पुष्कल भण्डार सञ्चित करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि उस उद्दाम अवस्था में कदापि इस भण्डार में से खर्च करने का अवसर न मिले तथापि ऐसा समय आवेगा कि जब हमें अपना टट्टू चलाने को इस भण्डार की आवश्यकता होवेगी।

जगत् का ज्ञान कैसे सम्पादन करना।

जगत् का ज्ञान केवल जगत् से ही प्राप्त होता है, कुछ घर में बैठ रहने से नहीं मिलता। केवल पुस्तकों से भी यह ज्ञान सीखा नहीं जाता, परन्तु पुस्तक बांचे बिना कितनी बातें जो अवलोकन से रह जाती हैं वे पुस्तकों ही से ध्यान में आ सकती हैं। पुनः पुस्तक में किये हुए अवलोकन से, मनुष्य जाति विषयक अपने अवलोकन की तुलना करने पर सत्यबात निश्चय करने में बहुत सहायता मिलती है।

जितना लक्ष और बुद्धि का व्यय पुस्तकों के समझने में दर्कार है उतना ही मनुष्य जाति को सम्पूर्ण रीति से जानने में भी आवश्यक है और इस से अधिक, चतुराई और परीक्षा करने का गुण भी होना चाहिये। मेरी कई वृद्ध मनुष्यों के साथ जान पहचान है जिन्हो ने अपनी सारी अवस्था इस विस्तृत जगत् में व्यय की परन्तु ऐसे विलक्षेपन और बेपरवाही में कि उन को जितना ज्ञान १५ वर्ष की उमर में था उस से बढ़ कर आज नहीं है। इस लिये तुम अपने मन में यह गुमान मत करो कि साधारण मनुष्यो के साथ गप्पें मारने से यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

बातचीत करने के साथ ही कुछ गहरी दृष्टि से मनुष्यों को देखना और उन के विषय मे जानना भी चाहिये। अतएव जिन मनुष्यों के साथ बातचीत करने का तुम्हें समागम हो उन की रीति भांति कैसी है उस को बड़ी सावधानी से खोज निकालो। उन के प्रबल मनो बिकार, उन के मुख्य दोष, उन का अहङ्कार, उन की मूर्खता और उन के मनोभाव इन सब के जानने का प्रयत्न करो और इसी के साथ मनुष्यकरणी की सब छोटी

खरी व चतुराई और मूर्खता की कमानियों को पहचानो, कारण कि यह मनुष्य करणी ही हमारे जैसे वे परवाह और चञ्चल चित्त वाले मनुष्यों को विचारवन्त बनाती है।

कभी किसी को धिक्कार मत प्रकट करो।

ऐसा कभी मत समझो कि जगत् में कोई भी मनुष्य अत्यन्त हलका और गया गुज़रा है, क्योंकि अभी या अन्य समय में किसी न किसी प्रकार से शायद वह तुम्हारे उपयोगी हो सके। परन्तु ऐसे मनुष्यों को यदि एकबार भी धिक्कार बतला दोगे तो निःसन्देह वे तुम्हारे काम में न आवेंगे। हानि बहुधा भुला दी जाती है परन्तु धिक्कार कभी नहीं भूली जाती और अहङ्कार उस को सदा याद रखता है। अतएव किसी को धिक्कारना उचित हो तो भी प्रकट रीति से कभी ऐसा मत करो। इस से तुम्हारे द्वेषी तथा शत्रु न बनेंगे। मनुष्यमात्र अपने अपराधों की अपेक्षा सदा अपने दूषण और निर्बलता के प्रकट होने से बड़े ही अप्रसन्न होते हैं, किसी को प्रकट में लुच्चा कहने से जितना क्रोध उस को आवेगा उस से कहीं अधिक क्रोध उस को नादान, मूर्ख, नीच, अथवा गंवार कहने से उत्पन्न होगा और चिरकाल पर्य्यन्त वह तुम से कीना रखेगा।

किसी मनुष्य को उस का हलकापन मत जनाओ।

अपने से बात करने वाले मनुष्य के ज्ञान, द्रव्य और पदवी विषयक कनिष्ठता उसे जनाने का प्रयत्न करना, इस के जैसी अपमान पहुंचाने वाली दूसरी कोई बात नहीं। ज्ञान के लिये

ऐसा जतलाना तो असभ्यता और दुष्टस्वभाव का लक्षण है और पदवी व द्रव्य के विषय में कहना अन्याय है क्योंकि ये दोनों बातें उस के हाथ में नहीं। सभ्य व कुलीन मनुष्य दूसरों को रञ्ज पहुंचाने वा हलका बनाने की अपेक्षा सदा उन को अपने समान करने की इच्छा रखते हैं। इस के अतिरिक्त इस गुण के धारण करने से शत्रुओं के स्थान में हमारे बहुत से मित्र बन जावेंगे। प्रत्येक को प्रसन्न करने का सदा लक्ष रखना प्रसन्न करने की कला का एक बड़ा आवश्यक भाग है; ऐसा लक्ष प्रकट करने से मनुष्य स्वयं आनन्दित होते, बड़ी २ वस्तुओं की अपेक्षा इस से उन का ध्यान शीघ्र खिंच सकता और वे झट वशीभूत हो जाते हैं। संसार सम्बन्धी व्यवहारिक धर्म निबाहना भी प्रत्येक मनुष्य को आवश्यक है परन्तु उपयुक्त विषय पर लक्ष रखना एक खुशी का काम है जो सुशिक्षण व सुस्वभाव से स्वयं बर्त्ताव में आ जाता है। जगत इस ढंग को स्वीकारता, सदा याद रखता और बदले में हमारे साथ भी उसी रीति से बर्त्तता है।

लोकों की निर्बलता व छिद्र कभी प्रसिद्ध मत करो।

किसी मण्डली को रिझाने या अपनी श्रेष्ठता बतलाने के लिये दूसरे लोकों के छिद्र और निर्बलता प्रकट करने में बहुत से जवान पुरुष बड़े उत्सुक रहते हैं, परन्तु हमें इस लोभ में न फंसना चाहिये। ऐसा करने से शायद कुछ काल तक हमारा नाम प्रसिद्ध हो जावे, परन्तु इस से जो शत्रु बनते हैं वे सदा के लिये रहेंगे और जो अभी हमारे मित्र हैं वे भी विचार

करने पर हम को धिक्कारेंगे और हम से भय खावेंगे। यह दुष्ट स्वभाव है और शुद्ध अन्तःकरण वाले मनुष्य दूसरों के छिद्र और विपत्तियों को प्रसिद्ध करने के स्थानापन्न उन को गुप्त रखने की इच्छा रखते हैं। यदि हमारे में चातुर्य है तो दूसरों को प्रसन्न करने के लिये उस का उपयोग करना, न कि दुःखी करने को। हमें समशीतोष्ण कटिबन्ध के सूर्य्य की नाईं किसी को ताप पहुंचाने के विना प्रकाश पहुंचाना चाहिये।

प्रकृति व आकृति का अटल संयम।

जगत् के व्यवहार में कितनी एक निर्दोषकला की आवश्यकता है और जो पुरुष जितना शीघ्र उन कलाओं का उपयोग करेगा उतना ही अधिक वह दूसरे मनुष्यों को प्रसन्न रखेगा और वृद्धि को प्राप्त होगा। युवा पुरुष प्रायः उत्साह और चपलता को लिये हुए ऐसी कलाओं को उपयोगी न समझ कर उन्हें भूल जाते और कष्टकर मानते हैं; परन्तु जगत् के भूतज्ञान और अनुभव से बहुधा काल बीतने पर उन कलाओं की आवश्यकता ध्यान में आती है। इन में मुख्य अपने स्वभाव पर अंकुश रखना, मन की स्थिरता और चेहरे का गाम्भीर्य है, जिन से आन्तरङ्ग उद्वेग और वृत्तियां, शब्द, शरीर व्यापार और मुखमुद्रा से प्रकट नहीं हो सकती हैं। इन कलाओं के जानने से शान्त और योग्य मनुष्य महत्कार्य्य ही में नहीं, किन्तु जीवन के सर्व सामान्य कामों में भी अलभ्य लाभ उठाते हैं। जिस पुरुष में अरोचक बातें सुनने की सहन शक्ति नहीं, और रोचक बातें सुनते ही जिस से हर्ष दर्शा कर हंसे विना नहीं रहा जाता वह सदा प्रत्येक प्रपंची, शठ और वाचाल फक्कड़ों का आखेट बना रहता है। शठ इस अभिप्राय से प्रसन्न या अप्रसन्न करेगा कि तुम अजान में कुछ बोलो अथवा अपने मन का भेद चेहरे पर

जमा हो, और तुम्हारा गुप्त भेद वह अनायास ताड लेगा ; फलतः अपनी मूर्खता और अज्ञानता से वह भेद प्रसिद्ध कर देगा व लोक उस से लाभ उठावेंगे ।

यदि तुम अपने को क्रोध के उभार में पाओ तो मन में इतना निश्चय करलो कि "जब तक क्रोध का आवेश रहे तब तक एक शब्द भी उच्चारण न करना।" क्रोध भी सन्निपात ही है, दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि एक थोडे काल तक और दूसरा विशेष काल तक रहता है ।

सारांश कि तुम्हारे चित्त में चाहे जितना उद्वेग हो उस का तुम्हारी प्रकृति और आकृति में आविर्भाव न होने पावे इतनी प्रभुता सम्पादन कर लो । हां, ऐसा करना कठिन है, परन्तु अशक्य नहीं । एक तर्फ तो बुद्धिमान् पुरुष अशक्य वस्तु के लिये प्रयत्न नहीं करता, परन्तु दूसरी तर्फ किसी कार्य्य की दुर्घटना से वह उस से निराश भी नहीं होता है, किन्तु ऐसी अवस्था में उल्टा अपने उद्यम और तत्परता को द्विगुण कर के दृढ रहता और निस्सन्देह जय प्राप्त करता है । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहना, यह तुम को अपना सद्विचार ज्ञात करे और वह वस्तु उपयोगी हो तो उस की प्राप्ति की कठिनता के अनुसार अपने उद्यम को प्रदीप्त करो, परन्तु निराश हो कर अपना प्रयत्न भङ्ग कभी मत करो । एक रीति से श्रम निष्फल हो तो दूसरा उपाय सोचो, और कार्य्य में प्रवृत्त रह कर उद्योग करते जाओ तो अन्त में जय होगी । अमुक कार्य्य के वास्ते कितने ही मनुष्यों को समझाना पडता, कितने की खुशामद करनी होती, कितने को भय बतलाना पडता और कितने को अप्रसन्न करना पडता है , परन्तु युक्ति और योग्य रीति से उन सब के साथ व्यवहार किया जावे और उन की पृथक् २ अपूर्णता पर लगातार हमले किये जावें तो अन्त में सब ठिकाने पर आ सकते है । ऐसा करने को अवसर विवेक के

साथ सुनना चाहिये, कारण कि हरएक मनुष्य का अपने २ चित्त की प्रफुल्लितता का समय होता है, दिन भर वैसा नहीं रहता। जिस समय कोई मनुष्य अमुक कार्य्य के पूर्ण विचार में हो अथवा जब वह शोकातुर, क्रोधित वा अन्य किसी प्रतिकूल शोच में हो, उस समय तुम उस को कोई दूसरी बात कहोगे तो वह बात बिना अवसर कही समझी जावेगी।

अपने मनोभाव से दूसरों के मनोभाव की परीक्षा करना।

दूसरों के मन की परीक्षा करने के लिये प्रथम अपने मन को जानने का अभ्यास करो क्योंकि मनुष्य तो बहुधा सब समान ही है। यद्यपि एक में अमुक प्रकार का मनोविकार दूसरे की अपेक्षा अधिक बलवान होता है तो दूसरे में दूसरा, तथापि हर-एक की क्रिया बहुधा समान ही है। जिन जिन कारणों से तुम अपने प्रति सुखी को प्रिय अथवा अप्रिय लगोगे और वह तुम से प्रसन्न वा अप्रसन्न होगा उन्हीं कारणों से वह भी तुम को प्रिय या अप्रिय लगेगा और तुम उस से प्रसन्न या अप्रसन्न होओगे। अपने मन के सर्व व्यापार, अपने मनोविकार की प्रकृति और भिन्न हेतु से जो इच्छा उत्पन्न होती हैं उन हेतुओं को, अतिप्रयत्न के साथ ढूंढोगे तो मनुष्य जाति मात्र की बहुत कुछ परीक्षा कर सकोगे।

उदाहरण—कोई मनुष्य जो तुम से ज्ञान, बुद्धि, पदवी और द्रव्य में श्रेष्ठतर है यदि तुम को ऐसा जनावे कि "तुम मुझ से इन बातों में न्यून हो" तो क्या तुम को अच्छा लगेगा? जिस मनुष्य की शुभेच्छा, सुवाक्य, अपने में हित, चाह और मैत्री सम्पादन करने की तुम को इच्छा है उस को कभी अपनी श्रेष्ठता नहीं बतलाओगे; अथवा जो तुम से कटु वचन और मुंहेसुख के साथ

सदा विरुद्ध बोलें जिस से तुम को क्रोध उत्पन्न हो, बुरा लगे, तो जिस मनुष्य की प्रसन्नता सम्पादन करने की तुम्हारी इच्छा है क्या उस के साथ तुम ऐसा ही बर्त्ताव करोगे? कदापि नहीं। और मैं आशा रखता हूं कि बस्तुतों की प्रसन्न रखने और उन से स्नेह करने की तुम्हारी इच्छा है। कुछ बुद्धिमता के साथ निन्दा या रञ्ज की बातें—जो द्वेषवश बहुधा सराही जाती हों—कहने की लालच से जो लोक ऐसी बात कह सकते या ऐसा जान के भी, कि हम कहने को अशक्त हैं, कहने का प्रयत्न करते हैं उन के जैसे कदर शत्रु ऐसी बातों से उत्पन्न हो जाते वैसे मेरी जान में अन्य रीति से नहीं होते है। यदि तुम्हारे लिये कोई ऐसी बातें कहे तो गम्भीरता के साथ अपने मन में विचार करो कि तुम को उन से कितना क्रोध, बेचैनी, और बैर उत्पन्न हो जावेगा और इस का भी तौल कर लो कि इन्हीं साधनों से दूसरों के मन में ऐसे विचार उत्पन्न कराना चातुर्य्यता है या नहीं?

ऐसी मसखरी करना सरासर मूर्खता है कि जिस से मित्र भी शत्रु बन जावे; मेरा तो यह मत है कि किसी बोदे मनुष्य को भी मसखरी कर के शत्रु बना लेना थोडी मूर्खता नहीं है। जब इस प्रकार की बातें तुम्हारे लिये कही जावे तो उसम चातुर्य्यता तो यही है कि उन को तर्फ ध्यान न देना मानो वे तुम्हारे लिये कही ही न गई और कुछ क्रोध उत्पन्न हो तो गुप्त रख कर भुला देना, यदि कोई मनुष्य मण्डली में इस प्रकाट रीति से तुम्हारी मसखरी करे कि तुम उस के अर्थ से अज्ञान न समझे जा सको, तो तुम्हें भी हंसी में शरीक हो जाना अच्छा है, न कि उस से बुरा मान कर वैसा ही अनुचित उत्तर देना; इस से तुम्हारा क्रोध जिस को तुम गुप्त रख सकते थे प्रकट में आ जावेगा। यदि कोई ऐसी बात कहे कि जिस से तुम्हारी प्रतिष्ठा या सदाचार में हानि पहुंचती हो तो गृहस्थ और बुद्धिमान् पुरुष को करने के दो उपाय है—या तो

अतिशय नम्रता प्रकट करनी या ललकार कर उस को मैदान में सम्मुख कर लेना कि फिर तलवार फैसला कर दे।

जहां तक हो सके अपमान करनेवाले से बचो।

यदि कोई मनुष्य प्रकट रीति से तुम्हारा अपमान कर के जान बूझ कर तुम को बेआबरू करना चाहे तो उस को मार गिराओ; परन्तु जब वह केवल दुःखदायक हो तो उस के साथ बाह्य व्यवहार में अतिशय सभ्यता युक्त वर्त्ताव कर गुप्त रीति से उस के वर्त्ताव का व्याज सहित बदला दो। इस के तुल्य वैर लेने की अन्य कोई रीति नहीं है। यह विश्वासघात या कपट नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि तुम किसी मनुष्य से ऐसा कह के कि मैं तुम्हारे साथ मैत्री रखता हूं, अन्तर में उस से वैर लेने की युक्ति चलाओ तो तुम कपटी या विश्वासघाती होने के दोषी हो, जिस के लिये मैं कदापि तुम को शिक्षा नहीं करता, परन्तु उल्टा इस बात को धिक्कारता हूं। प्रचलित सभ्यता के अनुसार वर्त्ताव करना ही रीति भांति के अनुकूल चलना है, क्योंकि गुप्त विरोध या द्वेष से समाज के अमन में गडबड न होनी चाहिये। जो दया न कर के सदा उन पर हंसता तो ऐसे मण्डल से स्त्रियां वा छोटे मन वाले मनुष्य रिसा के या तकरार कर के अपनी हंसी कराते है। मै अपनी बात कहता हूं, कि मै किसी स्पर्धा करने वाले को कभी आगे न बढने देता, परन्तु अन्य मनष्यों की अपेक्षा उस को अधिक सभ्यता बतलाने के लिये सदा उत्सुक रहता हूं। प्रथम तो ऐसे व्यवहार से सर्व हंसने वाले हमारे पक्ष में हो जाते जिन की संख्या बडी होती है और दूसरा, प्रतिपक्षी, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अवश्य प्रसन्न हो कर ऐसा कहे बिना नहीं रहता कि "इस अवसर पर अमुक बात में तुम ने बहुत उत्तम रीति से व्यवहार किया जिस को मैं भी मानता हूं।"

शत्रु पर क्रोध होवे उस को गुप्त रखना।

शारांश कि अपने आचार का यह एक दृढ नियम करलो कि जिस क्रोध की तुम कुछ भी तृप्ति न कर सको उस की किञ्चित् मात्र झलक भी कभी प्रकट मत करो; और जहां कुछ बस न चलता हो वहां सदा प्रसन्न मुख ही रहो। उद्योगी और व्यवसाई मनुष्य को जगत् के व्यवहार में प्रति दिन क्रोधायमान होने के उचित कारण आ पडते हैं, परन्तु वे गुप्त न रखे जावें, या सहन न किये जावें तो इस संसार में किसी का निर्वाह भी न हो सके। जो मनुष्य अपने स्वभाव पर अङ्कुश नहीं रख सकता उस को उचित है कि जगत को त्याग निर्जन वन में जा कर किसी त्यागी के मठ में एकान्त सेवन करे। जिस मनुष्य को तुम हानि नहीं पहुंचा सकते, किन्तु वह तुम को हानि नहीं पहुँचा सकता हो उस से चिड कर वृथा क्रोध बतलाना उल्टा उस को क्रोध को उत्तेजित करना है, और जब वह तुम से झगडा करने तथा तुम को हानि पहुँचाने का कोई बहाना मिलने की ताक में हो, तो उस को वह बहाना तुम स्वयम् देते हो। परन्तु उस के साथ इस से विरुद्ध वर्त्ताव करने से सभ्यता की खातिर उस को दबा रहना पडेगा और समय पा कर या तो उस को द्वेष शमन हो जावेगा या प्रकट में आ जावेगा। इस के अतिरिक्त झगडा करना, चिडना और रिसाना ये अत्यन्त नीच और हलके कर्म हैं।

किसी मनुष्य की प्रामाणिकता पर अतिशय विश्वास न करो।

यद्यपि मनुष्यमात्र एक ही प्रकार की रचना से बने हैं तथापि प्रत्येक में कई एक वस्तु का घाट बाढ इस रीति से रखा हुआ है कि दो मनुष्य भी एक दूसरे से मेल नहीं खाते, और कोई भी सदा

एक ही हालत में नहीं रहता है। बड़ा योग्य पुरुष भी कभी मूर्खता का काम कर बैठता, महाज्ञानी भी कभी नीच कर्म करता, अतिप्रामाणिक से भी कभी बुरा काम बन जाता और अतिदुष्ट कभी सुकर्म करता है। अतएव प्रत्येक पुरुष को भले प्रकार परीक्षा कर के उस के प्रधान मनोविकार का खाका अवश्य ढूंढ़ निकालना चाहिये। परन्तु इस से पूर्व उस के हलके मनोविकार, तृष्णा और तबीयत पर लक्ष दे कर खोलना तद्पश्चात् प्रधान का निश्चय करना चाहिये। किसी के साधारण आचार जगत में सब से बढ़ कर प्रामाणिक मनुष्य के से हों तो उस में वाद मत करो, क्योंकि ऐसा करने से ईर्ष्यायुक्त और दुष्टस्वभाव वाले ठहरोगे, ऐसे ही उस की सत्यता पर भी इतना विश्वास न रखो कि जिस से अपना जान माल और प्रतिष्ठा उस के हस्तगत कर दो। अधिकार, हित और प्रेम ये तीन प्रकार के मनोविकार प्रामाणिकता को पूर्ण रीति से परीक्षा की कसौटी पर खींचते हैं; यदि इन तीनों में वह प्रामाणिक मनुष्य तुम्हारा प्रतिपक्षी होवे तो प्रथम उस की जांच अपने तौर पर कर लो, तब उस पर कितना विश्वास करना और कितना न करना इस को जानने में तुम समर्थ हो जाओगे।

स्त्री पुरुषों के ऐब और मनोविकार के भले प्रकार जानकार होओ।

यदि तुम किसी मनुष्य (पुरुष या स्त्री) की मैत्री और स्नेह सम्पादन करने को विचार पूर्वक चाहते हो तो जो उन में कोई वशिष्ठ गुण हो उस को प्रकट कर के उस की योग्य प्रशंसा करो; और हरएक में रहनेवाले कोई बड़े दोष हों तो उन को भी ढूंढ निकालो और उन की अधिक प्रशंसा करो, कोई मनुष्य कई विषयों में औरों से आधिक्य रखता या रखने वाला समझा जाता है और इस

अमुक विषय में श्रेष्ठ है ऐसा जो जानते हों, वे उस विषय में अपनी प्रशंसा सुनने को उत्सुक रहते हैं, तथापि जिन विषयों में वे बढे हुए होने की इच्छा रखते हैं परन्तु वास्तव में ऐसे हैं या नहीं इस का उन्हीं को सन्देह है, उन विषयों में अपनी उत्तम प्रशंसा सुनने से मनुष्य अधिक प्रसन्न होते हैं।

इस का दृष्टान्त—कार्डिनल् रिशोलोम अपने समय में सबों से योग्य राज्य प्रबन्ध करता था। उस के सिर में यह भी समाया हुआ था कि लोक मुझ को महान् कवि भी मानें। महान् कार्निल् की उस को ईर्षा हुई और उस कवि को सिंह नाम की कविता पर इस ने समालोचना लिखवाई, इस पर जिन लोगों को युक्ति से प्रशंसा करने का ढंग था, वे उस की राजकीय कार्य्य कुशलता पर विशेष न कहते हुए (कभी स्वाभाविक रीति से प्रसङ्ग में कह दिया) यह जान कर कि ऐसा धूप खेवेंगे तो उस के धूम से हम पर कार्डिनल् की कृपा बनी रहेगी, उस को कवि की पदवी दे कर प्रशंसा करते। इस का कारण यही था कि कार्डिनल् रिशो-लोम को राज्य कार्य्य में अपनी कुशलता पर भरोसा, परन्तु कवि होने में सन्देह था।

सर्व के अहंभाव की प्रशंसा करो।

प्रत्येक मनुष्य अपनी चाहती बात कहे उस को ध्यान में रखने से तुम को सहज में मालूम हो जावेगा कि उस मनुष्य का प्रबल अहंभाव क्या है, क्योंकि वह प्रायः ऐसी बात निकालेगा कि जिस में अपने को श्रेष्ठ बनाना चाहता हो। ऐसी बातों पर लक्ष देने से तुम तुरन्त उस की परीक्षा कर सकोगे।

स्त्री जाति को विशेष कर अपने रूप का अभिमान रहता है, अतएव रूप की चाहे जितनी प्रशंसा करो तौभी वे यही जानेंगी

कि यह ठीक कहता है। परमेश्वर ने ऐसी कुरूप स्त्री शायद ही बनाई हो जो अपने रूप की प्रशंसा को असत्य समझती हो। यदि उस का चेहरा ऐसा भयानक होवे कि वह स्वयम् उस से ज्ञात हो, तथापि ऐसा मान लेती है कि मेरे शरीर की आकृति और मेरा स्वरूप ऐसा है कि चेहरे की ऐब को ढक देता है; जो शरीर बेडौल हो तो ऐसा मानती कि मेरा चेहरा ऐसा सुन्दर है कि इस दोष को दूर कर देता है और यदि चेहरा और शरीर दोनों भद्दे हों तो मान लेती कि मुझ में ऐसी लावण्यता है जो रूपवती को भी पीछे रखती है। यह बात सत्य है और इस का उदाहरण देखना चाहो तो देखोगे कि अतिशय कुरूप स्त्री भी अपने वस्त्र बडी टीप-टाप और ढब के साथ पहनती है।

मेरे इस कहने का अर्थ विपरीत समझ कर ऐसा मत जान लेना कि मैं तुम को नीच और कपट भरी मिथ्या प्रशसा करने की शिक्षा देता हूं, नहीं, किसी मनुष्य के दुर्गुण और दोष की प्रशंसा कभी मत करो किन्तु उस को धिक्कार कर जहां तक हो सके उन के मिटाने का प्रयत्न करो; परन्तु न्यून बुद्धि निरपराधी तथा हंसी के योग्य अहंभाव रखने वाले लोगों के साथ कौन मनुष्य मिठास से वर्त्तना नहीं चाहता है। कोई पुरुष अपने को अधिक बुद्धिमान और स्त्री अपने को विशेष रूपवती समझे तो उन की यह भूल उन को सुखकारक और दूसरों को हानि करने वाली नहीं, अतएव ऐसे लोगों को प्रसन्न रख कर अपने मित्र बना लेना चाहिये, सत्य बात प्रकट कर के उन को व्यर्थ शत्रु बनाना उचित नहीं है।

सद्गुण से अतिशय भरपूर होने का डौल रखने वालों पर सन्देह रक्खो।

किसी भी सद्गुण की असाधारण रीति से मूर्त्ति बनने वाले, और ऐसे ही वह सद्गुण दूसरों की अपेक्षा उत्तम और हमारे ही में

है, ऐसा बतलाने वालों पर सदा सन्देह ही रखना चाहिये। मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि उन पर सन्देह रखो, क्योंकि साधारण रीति से वे ढोंगी होते हैं। दृढ़ता के साथ मत मानलो कि वे सदा ऐसी ही होते, क्योंकि कभी कोई साधुवेशधारी, सत्यधर्मनिष्ठ, निराभिमानी, शूरमा, रीति रिवाज के सुधारक, प्रामाणिक और अति विनीत, खरे और पवित्र भी देखने में आये है। इस को जानने के लिये उन के हृदय के अन्तःस्थान में प्रवेश करो और साधारण रीति से जो ख्याति लोक में उन के लिये प्रसिद्ध हो, उस को बिना परीक्षा किये मत मान लो। जगत् में जो ख्याति होती है वह किसी मनुष्य के विशेष गुण की सामान्य बातों में सत्य होती, परन्तु सर्व विशेष व्यौरे के सम्बन्ध में बहुधा असत्य होती है।

बात बात पर दोस्त बनने वाले से सचेत रहना चाहिये।

थोड़ी सी पहचान होने पर, तुम्हारी तर्फ से इच्छा प्रकट हुए बिनाही, अपनी अयोग्य मैत्री और विश्वास को जो मनुष्य अतिशय आग्रह के साथ देते हों उन से सावधान रहो, क्योंकि वे केवल उपजीविका के निमित्त अपनी मैत्री और विश्वास का तुम्हारे में आरोपण करते है; परन्तु साथ ही ऐसी साधारण धारणा से ऐसे मनुष्य का एकदम अविवेक पूर्वक तिरस्कार करना भी अनुचित है। विशेष परीक्षा करो, कि क्या यह निरीच्छित भेंट उत्सुक हृदय और मूर्ख मस्तक से हैं या प्रपञ्ची और छलयुक्त अन्तःकरण से। लुचपन और मूर्खता के लक्षण बहुधा एक से ही होते हैं, यदि वह मनुष्य भला और मूर्ख हो तो उस की मैत्री को स्वीकारने में कुछ हानि नहीं, परन्तु उस की योग्यता के अनुसार उस से बर्त्ताव करना चाहिये और यदि वह प्रपञ्ची और कपटी हो तो प्रकट

में उस को यह विश्वास करा देना उपयोगी है कि मैं तुम्हारी मैत्री को स्वीकारता हूं और फिर युक्ति पूर्वक उस के शस्त्र का वार उसी पर करना चाहिये।

प्रतिज्ञा पूर्वक कही हुई बात का विश्वास न करो।

कोई बात ऐसी सम्भवित हो कि उस को सत्य मनाने के लिये साधारण रीति से कह देना ही काफी है, इस पर भी यदि कोई मनुष्य उस को बडी २ प्रतिज्ञा कर के कहे तो निश्चय जानो कि वह झूठ बोलता है और अपनी बात का विश्वास कराने में उस का अतिशय स्वार्थ है क्योंकि जो ऐसा न होता तो इतना परिश्रम न उठाता।

विषयसुख के कारण होने वाले सम्बन्ध से दूर रहो।

जिन युवा पुरुषों में केवल आनन्द भोगों से परस्पर का स्नेह जुडता है उन में मैत्री का असंयम होना सम्भव है और इस प्रकार के सम्बन्ध के परिणाम बहुधा बुरे होते हैं। राग रंग के मजे और शराब को लज्जत से भरा लहर में आये हुए किञ्चित् उत्सुक परन्तु अनुभवहीन पुरुष खरे अन्तःकरण से परस्पर अखण्ड मैत्री रखने की प्रतिज्ञा कर के कुछ भी सकोच न करते हुए अपनी हृदयगत सब बातें वहां प्रकट कर देते हैं। जितने अविचार से ऐसा विश्वास बंधता उतनेही थोडे से विचार से वह मोहभङ्ग हो जाता है क्योंकि नवीन स्थल मिलने और नवीन रंग लगने पर ऐसा अदृढ़ सम्बन्ध तुरन्त टूट जाता और उस बिना विचार किये हुए विश्वास का बहुत बुरा उपयोग होता है। जवान साथियों की सङ्गति में जाओ इतना ही नहीं किन्तु अपनी मण्डली को पाहतो और युवावस्था

के योग्य राग रंग सम्बन्धी आनन्द में बन सके तो औरों से बढ़ कर रहो। जो इच्छा हो तो अपनी प्रेमवार्त्ताओं से उन को शान्त करो परन्तु अपने गम्भीर विचार उन को कभी मत कहो। जो अपने अनुभूत मित्र हों, अपने से बढ़ कर अनुभवी हों और इस संसार में कदापि मत भेद हो जाने पर भी वे तुम्हारे प्रति स्पर्धी हो जावें ऐसा सम्भव न हो, ऐसेही मित्रों को अपने गुप्त अभिप्राय दर्शाने चाहिये, क्योंकि मनुष्य जाति के वीर गुण पर इतना बढ़ कर आधार रखने की मेरी सम्मति नहीं—कि जिस वस्तु के लिये स्पर्धा हुई है उस के सम्बन्ध में तुम्हारा प्रतिस्पर्धी तुम्हारा मित्र बना रहे ऐसा मानो या आशा रक्खो।

बाहर से अजानपन बतलाना अकसर आवश्यक होता है।

प्रकट में अज्ञातपन बतलाना भी जगत के व्यवहारिक ज्ञान का एक आवश्यक भाग है। जैसे कोई मनुष्य तुम को कोई बात कहने आवे और तुम उस बात को जानते हो, तथापि अजानपन प्रकट करना साधारण रीति से सम्मत है। जब वह पूछे कि "क्या तुमने अमुक बात सुनी" तब नाहीं करना और जो जानते भी हो तथापि उस को वह बात कहने देना चाहिये, क्योंकि कितने मनुष्य अपने को बात का कहने वाला मान के उस बात के कहने में खुशी मानते हैं। कोई तो ऐसे गर्व के साथ उस को कहते हैं कि मानो उन्हों हो ने बडी होशियारी के साथ उस बात को ढूंढ निकाली हो और कितने को (विश्वासपात्र न होते भी) ऐसा बतलाने का मिथ्या अभिमान रहता है कि दूसरे लोग हम पर विश्वास रखते हैं, इस को लिये हुए वे बात कहते हैं। यदि तुम ऐसा कह दो कि अमुक बात तो हम पहले से जानते हैं तो वे सब मनुष्य निराश होने से अप्रसन्न होंगे।

किसी की निन्दा या अप्रतिष्ठा की बात तुमने हजारबार सुनी हो तथापि अपने अन्तरङ्ग मित्र के सिवा औरों के सम्मुख उस के विषय में केवल अजानपन ही प्रकट करो। कारण कि जिस मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसी बात चलती हो वह उस के सुननेवालों को चोर के तुल्य बुरा जानता है, इस लिये ऐसे मनुष्यों के सम्बन्ध में कोई बात चले तब, यद्यपि तुम को दृढ़ विश्वास हो, तथापि ऐसेही जनाओ कि मैं इस बात को नहीं मानता और उस को काटने का प्रयत्न करो। उपर्युक्त अजानता बतलाने की रीति के साथ हरएक बात को गुप्त प्रकार से पूरी २ जानने की भी रीति रक्खो। अजानपन दर्शाना सर्व प्रकार के समाचार प्राप्त करने की उत्तम विधि है क्योंकि थोड़े काल के लिये और अति निर्जीव विषयों में भी अपने को औरों की अपेक्षा होशियार जनाने में कितने मनुष्य ऐसे मिथ्याभिमानी हो जाते हैं कि जितनी बात से तुम अज्ञान हो उतनी ही कहने के बदले जो बात न कहनी चाहिये वह भी कह देते हैं। ऐसा अज्ञानपन दर्शाने से लोग तुम्हें अजिज्ञासु और निष्कपटी जानेंगे, तथापि हकीकत जानने के इच्छुक रह कर आस पास क्या होता है उस को पूरी २ खबर रखने का यत्न करो, परन्तु ऐसा करने में विवेक रखना और सदा न बन सके तो बहुधा खुली रीति से प्रयत्न न करना चाहिये क्योंकि इस से लोग सावधान हो जाते हैं और बारम्बार प्रश्न किये जावें तो अरुचि भी आती है। कभी तो जिस बात को जानना अभीष्ट हो उस के लिये ऐसा दर्शाओ कि मानो उस को पहले से जानते हो, अनुमान के साथ कहना चाहिये। यदि उस में कुछ भूल रहेगी तो कोई कृपापूर्वक या, अनुग्रहीत करने की इच्छा से सुधार देगा। कभी २ तो ऐसा कहो कि हम ने अमुक बात सुनी है और प्रसङ्ग वश जो कुछ जानते होओ उस से अधिक जानकार होने का डौल बतलाओ, इस से जो तुम जानना चाहते हो

यह सहज ही जानने में आजावेगा; परन्तु भरसक खुले प्रश्न नहीं करना चाहिये।

सभ्यता की रीति अति उपयोगी होती है।

जनस्वभाव सर्व जगत में एकही है परन्तु शिक्षा अभ्यास भेद से उस स्वभाव के उपयोग की रीतियां इतनी भिन्न भिन्न है कि उस के यथार्थ ज्ञान के लिये सर्व रूपों में उस को देखना चाहिये। जैसे कि एक राज्यधारी, एक सैनिक, और एक धर्माध्यापक पुरुष को कीर्ति का लोभ समान होता है परन्तु पृथक् पृथक् शिक्षा और अभ्यास को लिये हुए हरएक अपने अपने लोभ की तृप्ति के भिन्न २ मार्ग पकडता है। दूसरों की सम्भाल और उपकार करने का स्वभाव, जिस को सभ्यता कहते है, मुख्यत: सर्व देशों में एक सांही है, परन्तु उस के उपयोग की रीति (उत्तम शिक्षा) स्थल २ पर भिन्न २ है और हरएक बुद्धिमान मनुष्य, जिस स्थल में वह होता है वहां की रीति भांति के अनुसार बर्त्ताव करता है। सभ्यता की रीति की समानता और मृदुता संसार में अत्यावश्यक है अर्थात् उन सर्व बातों में जो बुरी नहीं चपल बुद्धि होना अति उपयोगी है।

चपलबुद्धि मनुष्य एक विषय से दूसरे विषय पर योग्य रीति से आ सकता और गम्भीर के साथ गम्भीर, हंसोड के साथ हंसोड और मूर्ख के साथ मूर्ख बन कर बर्त्ताव कर सकता है। भिन्न २ लोगों के रीति व्यवहार व टेव कुटेव को सरलता और प्रसन्नता के साथ बर्तने के समान आकर्षण करनेवाली कोई दूसरी बात नहीं है। सारांश कि युवा पुरुष को कोई बात कठिन प्रतीत न होना चाहिये वे उत्तम काम के लिये तय्यार रहै और प्रसङ्गानुसार अपना स्वभाव सरलता और प्रसन्नता के साथ बदल सके। उष्णता, शीत, राग रंग, परहेजगारी, गम्भीरता, आनन्द, शिष्टाचार, सरलता, विद्वत्ता, निर्जीवकाम, धन्धा, उद्योग और शौक इन सब बातो को सुगमता

के साथ धारण करने, त्यागने, और समयानुकूल वर्त्तने में शक्तिवान होना चाहिये।

उत्साह या उमंग।

युवा पुरुष बारम्बार ऐसी कल्पना कर लेते हैं कि उत्साह तथा यत्न से सब काम सिद्ध हो जावेंगे अतएव उपचार रखना एक नीचपन का चिन्ह है और मीठी २ बातें करना व सब को सिर झुकाते हुए चलना नीच बुद्धि और निर्बल मनुष्य का काम है। ऐसे भूल भरे विचारों से उन के आचरण में अशिष्टता, उतावल और रूखापन आजाता है। जिन मूर्ख पुरुषों के ये बातें ध्यान में नहीं आतीं वे उमर भर इन अपलक्षणों में फंसे रहते हैं, और बुद्धिशील मनुष्य अनुभव पाते ही विचार कर के तुरन्त इन को त्याग देते हैं। जब उन को अपने स्वरूप व अपने सजातीय अन्य मनुष्यों का कुछ सूक्ष्मज्ञान होने लगता तब मालूम पड़ता है कि दस में से नौ बार सादी सत्यशील बुद्धि, सर्व विजयी प्रेम और विषय वासना की दासी होती है। इतना जानने पर वे विजय किये हुए की ओर न झुकते हुए विजय करने वालों की उपासना करते हैं। यह तो सामान्य रीति से प्रसिद्ध है कि विजयी वीरों से सदा अतिशय कोमल, द्रावक, और प्रेम उत्पादन करने की रीति से बात करनी चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यवश, जैसे मदिरा में मतवाला मनुष्य अपने को उन्मत्त समझता है उसी प्रकार, युवा पुरुष भी अपने ही को बुद्धिमान मान कर उत्साह मात्र को ही सब में श्रेष्ठ मानते हैं; अनुभव को हिसाब में नहीं लाते इतना ही नहीं किन्तु उस को केवल निष्ठुरता रूप गिनते हैं। ऐसा समझना उन की आधी भूल है कारण कि यद्यपि अनुभव रहित उत्साह भय भरा हुआ है तथापि उत्साह रहित अनुभव निर्माल्य तथा अपूर्ण होता है, इन दोनों का संयोग ही खरी पूर्णता का रूप है। तुम को भी

यदि इस उपाय का योग करना हो तो करो क्योंकि मेरा सब अनुभव तुम्हारे लिये तय्यार है जिस के बदले में मै तुम्हारे उत्साह का कारण मात्र भी नहीं चाहता। अपने उत्साह और मेरे अनुभव का उपयोग इस रीति से करो कि वे अन्योन्य को प्रेरें या नियम में रखें। यहां उत्साह शब्द से मेरा अभिप्राय जवानी की चञ्चलता और विश्वास से है, जिन के कारण से युवा पुरुष धारण किये हुए काम में पड़ने वाली कठिनाइया और भय को नहीं देख सकते है, परन्तु जिस को मूर्खों का जोश कहते हैं उस से अभिप्राय नहीं इस जोश से नीच लोग अभिमानी, आत्मश्लाघी, हमारी कृदर कम हुई ऐसा वहम लाने वाले और छोटे २ प्रसङ्गों पर लोगो को कठोर उत्तर देने वाले हो जाते है। ऐसे बुरे और मूर्खता भरे हुए उत्साह वालों को मनुष्यों में से निकाल कर पशुओं में प्रवेश कराना उचित है।

पुराने मुलाकातियों का अनादर मत करो।

अन्त में यह कहता हूं कि नये या नामी मुलाकाती हो जाने पर पुराने मुलाकातियों का कभी अनादर या तिरस्कार मत करो, यदि ऐसा करोगे तो कृतघ्नी गिने जाओगे और लोग इस दोष को कदापि क्षमा नहीं करेंगे। जहां तक हो सके अपने मित्रो की सख्या बढाने और जाती शत्रुओं की संख्या घटाने का प्रयत्न करो। जाती मित्र से यह अभिप्राय नहीं कि वे हार्दिक और विश्वासपात्र ही होवें क्योंकि ऐसे मित्र तो भाग्य बल से किसी को मिलते हैं, परन्तु "मित्र" शब्द का साधारण रीति से जो उपयोग होता है वही समझो—अर्थात् जो मनुष्य तुम्हारा भला चाहैं और जब तक उन की हानि न होती हो तब तक तुम्हारा बुरा न करते हुए भलाही करै।

झूठ बोलना।

झूठ बोलने जैसा अपराधयुक्त, नीच और तुच्छ कर्म दूसरा नहीं। द्वेष बुद्धि, डरपोकपन, और अभिमान से यह कुचाल उत्पन्न होती है, परन्तु इस से किसी भाव से धारा हुआ कोई भी अभिप्राय सिद्ध नहीं होता क्योंकि झूठ कभी न कभी प्रकट होही जाता है। यदि हम द्वेषबुद्धि से किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा या जीविका की हानि पहुंचाने के लिये कोई झूठी बात बनावें तो अवश्य कुछ काल तक उस को व्याकुल कर सकेंगे, परन्तु अन्त में निश्चय हम को महा दुःख भोगना पड़ेगा क्योंकि जहां हमारी झूठ खुली कि तुरन्त ऐसा नीच कर्म करने के बदले नाश हो जावेगा। फिर उस मनुष्य के विरुद्ध यदि कुछ कहेंगे तो चाहे वह सत्य भी हो तथापि उस की गणना निन्दा ही में होगी।

झूठ बोलने या द्वार्थ शब्द बोलने (दोनों समान हैं), हमने जो कहा या किया हो उस से अपने को निर्दोष ठहराने, और जो खतरा या शरम उस से उत्पन्न होने का भय होवे उस को टालने के लिये झूठ या पेचदार बात कहने से अपने भय और झूठ को प्रकट करते, खतरे और शरम को टालने के बदले उन्हें बढ़ाते, और मनुष्य जाति में महा नीच जाने और माने जाते हैं। दुर्भाग्य वश यदि कोई बुरा कर्म हम से होगया हो तो उस को स्पष्ट रीति से स्वीकारने में एक प्रकार की महानुभावता है, और उस पाप को निवारण करने का केवल यही मार्ग है, क्षमा भी ऐसा करने से ही मिल सकती है। परन्तु उपस्थित भय को टालने के निमित्त द्वार्थी बोलना, उड़ाने की बात करनी, अथवा प्रपंच कर के फिर जाना इतना धिक्कारने योग्य और भय भरा हुआ कर्म है कि ऐसे कुकर्मी दण्ड के पात्र होते हैं।

एक दूसरे प्रकार के असत्य में मग्न रहने वाले भी लोग होते हैं जो उस को निर्दोष गिनते, और एक रीति से वह ऐसाही है,

क्योंकि तदनुसार आचरण करने में और किसी को नहीं परन्तु उन्ही को दुःख होता है। ऐसी जाति का असत्य मूर्खता से उत्पन्न हुए अभिमान का दुष्ट परिणाम है। ऐसे असत्य भाषी लोग अद्भुत व्यवहार करते हैं जिन पदार्थों की स्थिति हीन हो उन के लिये कह देंगे कि हम ने वे पदार्थ देखे, जो वस्तु उन्हो ने कभी देखी न हो परन्तु देखने के योग्य मानी जाती हो तो चट कह देंगे कि हम ने देखी है, किसी स्थान पर या किसी मण्डली में कुछ भी अद्भुत बनावटने या अद्भुत बात की जावे तो वे निःशङ्क कह देंगे कि अमुक बात हमने आंखों से देखी या कानों से सुनी है। पहले न तो किसी ने किया न आजमाया हो ऐसे चमत्कारिक काम के वास्ते वे कहेंगे कि हमारा किया हुआ है। सारांश कि अपनी कल्पित बातो के वे सदा आप ही नायक बने रहते और समझते हैं कि ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा बढती है। परन्तु वास्तव में देखा जावे तो उस की हंसी और तिरस्कार होता और साथ ही उन पर से विश्वास भी उठ जाता है, क्योंकि हरएक मनुष्य स्वाभाविक रीति से यह अनुमान कर सकता है कि केवल अहङ्कार को लिये हुए जो मनुष्य झूठ बोल जावे तो स्वार्थ के निमित्त विशेष झूठ बोलने में उस को क्या सङ्कोच होगा। बहुधा मानने में न आवे ऐसी कोई अति ही अद्भुत वस्तु हमने देखी हो तो उस का वर्णन कर के अपनी सत्यता के विषय में किसी को क्षण मात्र भी सन्देह उत्पन्न कराने की अपेक्षा तो उचित यही है कि वह बात किसी को न कहै। पुरुष को सत्यवक्ता की रीति से प्रतिष्ठा की जितनी आवश्यकता है उतनी स्त्री को पतिव्रतपालन की नहीं है, कारण कि अमुक स्त्री यथार्थ पतिव्रता होने के बिना भी सद्वृत्तियुक्त हो सकती है परन्तु अतिशय सत्यता के बिना कोई मनुष्य सदाचारी नहीं हो सकता। कभी कभी स्त्री की भूल केवल शारीरिकदोषजन्य ही होती परन्तु पुरुष में झूठ का दुर्गुण अन्तःकरण और मन की उत्पत्ति है।

प्रतिष्ठा के साथ बैखटके संसार को पार कराने वाला सत्य के सिवा दूसरा पदार्थ नहीं है। सत्य बोलना हमारा धर्म ही नहीं किन्तु इस से अर्थ लाभ भी होता है, इस का प्रमाण, जैसे कि अति मूर्ख बहुत झूठ बोलने वाला होता है। मनुष्य के सत्य की परीक्षा हम उस की बुद्धि से कर सकते हैं।

आचरण का प्रौढ़त्व।

इस संसार में अति गुणवान मनुष्यों को भी प्रतिष्ठित या प्रतिष्ठा पात्र होने के लिये आचरण का प्रौढ़त्व अवश्य चाहिये।

धूम धाम करना आदि।

खुरमस्ती, धूमधाम, बहुधा जोर से हंसना, ठट्ठे मारना, ठठोल और विवेक रहित आसङ्ग गुण और ज्ञान दोनों को धिक्कारने योग्य बना देते हैं। इन से बहुधा मनुष्य हंसोड हो जाता और हंसोड आज तक प्रतिष्ठित नहीं हुआ है। विवेक रहित आसङ्ग से या तो अपने गुरुजन अप्रसन्न होते या हम को सदा उन के आश्रित रहना पड़ता है। इस से, अपने से नीचे दर्जे वाले मनुष्य बराबरी का दावा करने लगते जो दुःख दायक और अनुचित है। ठट्ठेबाज़ व मसखरे का निकट सम्बन्ध है। इन दोनों का चतुराई से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। ऐसे मनुष्य की मण्डली में प्रतिष्ठा नहीं होती किन्तु उस का उपयोग किया जाता है—"अमुक का निमंत्रण करो वह ठट्टेबाज वा हसोड़ आदि है। ये सब अधम अन्तर और दुःखदायक प्रसंशा है जिन में मान और गौरव का लेश भी नहीं। यदि कोई मनुष्य, चाहे वह कितना हो गुणी हो, मण्डली में किसी एक बात के लिये चुन लिया जावे तो फिर उसी में उस की पूछ होती है अन्य किसी काम का नहीं समझा जाता।

गर्व ।

शेखी मारने और सच्चे पुरुषार्थ में अथवा ठट्ठा करने और वास्तविक चातुर्य्यता में जितना अन्तर है, गर्व और आचरण प्रौढ़त्व में उतनाही अन्तर नहीं किन्तु दोनों का विरुद्ध धर्म है। गर्व से मनुष्य का जितना अनादर होता है उतना अन्य किसी बात से नहीं होता। अहङ्कारी पुरुष के बडाई मारने पर हम को क्रोध नहीं किन्तु तिरस्कार और उस से विशेष अवज्ञा उत्पन्न होती है। जैसे कोई व्योपारी किसी वस्तु का मूल्य बहुत ही बढ़ कर मांगे तो हम उस को घटि ही थोडा बतलाते परन्तु जब वह वाजबी दाम बतलाते तो उस के साथ झंझट नहीं करते हैं।

नीच खुशामद ।

सारासार का विचार किये बिना किसी के मत से विरुद्ध होने वा ऊंचे स्वर से वाद विवाद करने से मनुष्य जितनी अरुचि श्रोता को उत्पन्न कराता है उतनाही अविचारित ढोंग और नीच खुशामद से भी वह कमीना कहलाता है; परन्तु सविनय अपना अभिप्राय प्रतिपादन करने और लोगों के साथ सभ्यता पूर्वक वर्त्तने से अपना पद बढाता है। हलके शब्द, नाना भांति की कुचेष्टा करना, और बोलचाल की ढब से मनुष्य हलका गिना जाता है क्योंकि इन बातों पर ऐसे विचार बंध सकते हैं कि या तो यह मनुष्य ओछे मन वाला है, या इस को शिक्षा अच्छी नहीं हुई या इस की सङ्गति नीच है।

निर्जीव जिज्ञासा ।

निर्जीव विषयों में जिज्ञासा प्रकट करने और निरुपयोगी बातों पर वारम्वार लक्ष देने से (जिन में क्षण भर की विचार की भी

आवश्यकता नहीं) मनुष्य हलका गिना जाता, और वह (जैसा कि होना चाहिये) महान विषयों पर विचार करने को अयोग्य समझा जाता है। कार्डिनल् चिगी ने कार्डिनल् डिरेट्ज़ से कहा कि आज तीन वर्ष हुए मैं एकही कलम से लिखता हूं तथापि अब तक वह दुरुस्त है। इसी वाक्य से कार्डिनल् डिरेट्ज ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ चीन्ह लिया कि कार्डिनल् चिगी हलके मन-वाला मनुष्य है।

प्रिय बोलने, और योग्य आनन्दित स्वभाव के साथ चिहरे पर वा शारीरिक क्रिया में किसी प्रकार बाहरी गम्भीरता होने से मनुष्य को प्रतिष्ठा प्राप्त होती, परन्तु ढोंग के साथ सदा प्रसन्नमुख रहने और शरीर की अयोग्य पञ्चलता से उस का निकम्मा-पन प्रगट होता है। कोई मनुष्य अति दौड धूप करे तो जान पडता है कि जो कार्य्य इस को साधना है वह इस की सामर्थ से बढ कर है क्योंकि त्वरा रखने और दौड़ धूप करने में बडा अन्तर है।

अन्त में—जैसे कोई मनुष्य धैर्य्य के साथ लातें खाकर आवे और फिर पराक्रम का डौल धारण करे उसी प्रकार दुर्गुणी और पाप से पूर्ण मनुष्य का बडप्पन का डौल बतलाना है, परन्तु बाहरी सभ्यता और विवेक युक्त वर्त्ताव ऐसे मनुष्य को भी कुछ काल तक अधोगति में जाने से बचाती है जो इन के धारण न करने से शीघ्र प्राप्त हो जाती, अतएव योग्य व्यवहार चाहे वह कल्पित ही हो तथापि उत्तम परिणाम उत्पन्न करने वाला है।

सभ्यता और नम्रता युक्त आचार मन की दृढ़ता सहित।

मनुष्य को हरएक स्थिति में नम्रता के साथ दृढता रखने के समान उपयोगी और आवश्यक नियम मेरी जान में दूसरा कोई

नहीं। यदि नम्रता को आश्रय व आभा देने वाली दृढ़ता न होवे तो केवल नम्रता रखने वाला पुरुष अवनति को प्राप्त हो जाता और उस में क्षोभ युक्त विनय और मन्दपन आजाता है, और जिस मनुष्य मे केवल दृढता ही होवे परन्तु उस को कोमल बनाने वाली नम्रता का अभाव हो तो वह क्रोधी और क्रूर हो जाता है तथापि ये दोनों गुण मिले हुए किसी में पाये जाते हैं। तामसी, क्रोध युक्त मनुष्य अति तीव्र पशु वृत्ति होने से नम्रता को धिक्कारता और सर्व उपस्थित कार्य्य दृढ़ता ही से करना चाहता है। जब ऐसे मनुष्य को डरपोक और अशक्त मनुष्यों के साथ काम पडता है तो कभी २ दैव योग से विजय प्राप्त कर लेता है, परन्तु उस को साधारण दशा अरुचिकारक, क्रोध उत्पन्न कराने वाली, और तिरस्कृत होने से वह अकसर अपने कार्य्य साधन में निष्फल होता है।

दूसरी ओर लुच्चा और कपटी मनुष्य नम्रता ही से अपना काम निकालने की इच्छा रखता और जिस रंग के मनुष्यों से उस को काम पडता वह वैसाही बन जाता है। यह नहीं जाना जाता कि स्वयम् इस का कुछ अभिप्राय है परन्तु समयानुकूल वह दूसरे लोगों के अभिप्रायों को हां हा कर के स्वीकारता है। वह युक्ति के साथ मूर्खों की प्रीति सम्पादन करता है, परन्तु अन्त में उस की धृष्टता प्रगट हो जाती और लोग उस का तिरस्कार करते हैं। चतुर मनुष्य, लुच्चे और क्रोधी दोनों से समान रीति से पृथक रह कर दृढ़ता और नम्रता दोनों के संयोग से व्यवहार चलाते हैं।

आज्ञा मधुर वचन से देनी।

उपर्युक्त दोनों गुणों के संयोग से असर कारक व प्रगट लाभ होते हैं जैसे कि:—यदि तुम किसी अधिकार पर हो और आज्ञा देने का हक रखते तो मधुरता और नम्रता के साथ ही

हुई आज्ञा प्रसन्नता और उमङ्ग के साथ उत्तम प्रकार से पालन की जावेगी; परन्तु यदि क्रूरता के साथ आज्ञा दी जावे तो पालन करने की अपेक्षा उस आज्ञा देने की रीति पर मनुष्य विशेष विचार करेंगे। क्योंकि शान्त और दृढ निश्चय से ऐसा प्रगट करना चाहिये कि जहां तुम को आज्ञा करने का हक़ है वहां उस का पालन भी होगा। परन्तु साथ ही आधीन बनाने की रीति में नम्रता होवे तो छोटे मनुष्य को उस में उमङ्ग रहकर उस का अपनी घटती पदवी का दुःखदायक ज्ञान कोमल हो जाता है।

प्रसाद कोमलता के साथ मांगो।

यदि तुम आश्रय या अपना हक भी मांगना चाहो तथापि नावधानता के साथ याचना करो, नहीं तो जो तुमको नांहीं करना चाहते हैं उन को इनकार के लिये तुम्हारी याचना की रीति से अप्रसन्न होने का बड़ा कारण मिल जावेगा। परन्तु साथही विवेक युक्त आग्रह से दृढ़ता और निश्चय भी बतला दो। मनुष्यों की ओर मुख्य कर बड़े दर्जे वालों में उन के कृत्यों के असली प्रेरक कारण सर्वथा सत्यही होवें इस में सन्देह है। ऐसे मनुष्य योग्यता और न्याय से कार्य न करते हुए बहुधा आधीनता और भय से कर देते हैं। जहां तक बन सके नम्रता और मनोहरता से उन का चित्त हरण करो और ऐसा न बने तो उन के अप्रसन्न होने के ढोंग को तो सदा रोको। परन्तु जो वस्तु उन लोगों के सरल स्वभाव या उन के न्याय से प्राप्त करने की तुम व्यर्थ आशा रखते हो वही वस्तु उन के पास से उन के सुख के लोभ, या उन के भय को लिये हुए आग्रह पूर्वक निकलवाने में पूरी दृढता और निश्चय प्रगट करने से कभी मत चूको। उच्च पंक्ति के मनुष्य मानव जाति के दुःख और उन की आवश्यकता के सम्बन्ध में ऐसे कठोरचित्त होते हैं जैसे वैद्य शारीरिक वेदना के लिये। बड़े आदमी दिन भर दीनों के दुःख आंखों

से देखते और कानों से सुनते हैं, परन्तु उन में इतने नकली होते कि वे सच झूठ की परीक्षा नहीं कर सकते। अतएव न्याय और दया के अतिरिक्त उन के अन्य मनोभावों का उपयोग करना चाहिये, अर्थात् लावण्यता के साथ उन की कृपा सम्पादन करनी अथवा अग्राह्य परन्तु उद्वेग रहित क्रोध को योग्य रीति से प्रगट करके उन के मन में चिन्ता जाग्रत करनी चाहिये। मेरी जान में इस संसार में तिरस्कृत होने के बिना प्रिय बनने, और धिक्कारे जाने के बिना भय उत्पन्न करने को उपर्युक्त शिक्षा ही केवल एक मार्ग है। इसी के द्वारा वह प्रतिष्ठा मिल सकती है जिस की प्राप्ति के लिये हर एक चतुर पुरुष को प्रयत्न करना चाहिये।

मिज़ाज की गर्मी को रोकना।

अन्त में यह कहता हूं कि यदि तुम्हारे मिज़ाज में गर्मी आई हुई मालूम दे, जिस से तुम अपने आप से बाहर हो कर बिना विचारे पैर उठाने लगो, अथवा अपने से बड़े या बराबरवाले या नीचे दर्जे के मनुष्यों से विवेक रहित होकर बात करो, तो उस समय अपने क्रोध को बड़ी सम्भाल के साथ रोक कर लावण्यता की सहायता लो। क्रोध उत्पन्न हुआ कि तुरन्त ही शमन होने पर्यन्त मौन साधन कर अपनी मुखमुद्रा पर इतना क़ाबू रखने का श्रम करना चाहिये कि चिहरे पर क्रोध के लक्षण झलकने न पावें। यह बात व्यवहार में अवश्य लाभकारक है। और साथ ही अपनी सभ्यता, स्वभाव की नम्रता और प्रतिमुखी को प्रसन्न रखने की निर्जीव इच्छा से या दूसरे लोगों के झांसे फुसलाहट और खुशामद से अपने न्याय और विचार शक्ति के बताये हुए मार्ग से ज़रा भी न हट कर धारी हुई बात को पकड़े रहने, पैरवी करने, और उस में अडिग रहने से तुम को कई सम्भव वस्तु प्राप्त होती

हुई मालूम देगी। दीन और डरपोक स्वभाववाले का अन्यायी लोग सदा तिरस्कार व अपमान करते हैं। परन्तु जो उस को दृढता और प्रण का सहारा होवे तो सदा मान मिलता और साधारण रीति से विजय प्राप्त करता है।

मित्र मण्डल और सगे सम्बन्धियों में व ऐसे ही शत्रुओं में भी निम्नलिखित नियम मुख्यतः उपयोगी होगा :—अपनी दृढ़ता और पुरुषार्थ के साथ लोगों की प्रीति का निर्वाह करो और नई प्रीति बढाओ। परन्तु साथ ही अपना वर्त्ताव ऐसा रक्खो कि अपने मित्र और आश्रित जनों के शत्रु तुम्हारे शत्रु होने से रुक जावें। नम्रता से अपने शत्रुओं को पराजित करो। परन्तु न्याय युक्त क्रोध की दृढता उन को बतलाते रहो कारण कि लीना रहना और दृढता के साथ स्वरक्षण करना इन दोनों में बडा अन्तर है। पहला हलकेपन का और दूसरा चालाक और चतुराई का काम है।

प्रतिस्पर्धी अथवा मुख़ालिफ़ के साथ सभ्यता रक्खो।

कितने एक मनुष्य अपने प्रतिस्पर्धी, प्रतिकूल अथवा सन्मुख होनेवालों के साथ विवेक और सभ्यता नहीं रख सकते, परन्तु कदाचित् कोई आकस्मिक कारण न होता तो उन को वे चाहते और मान करते। उन की सङ्गति में आप लज्जावश होकर अनार्य्य-पन प्रगट करते और उन को फजीहत करने के वास्ते निर्जीव बातें पकड कर अल्प काल तक रहनेवाले और केवल प्रासङ्गिक प्रति-पक्षियों को अपने निज के शत्रु बना लेते हैं। यह अत्यन्त निर्वलता-सूचक और हानिकारक बात है, जैसे कि व्यवहार में सर्व प्रकार का ठट्ठा। विकाररहित उत्तम नीति और उचित विचारशक्ति से ही ऐसा व्यवहार पूर्णता के साथ चल सकता है। ऐसे प्रसङ्ग पर मैं

यदि किसी मनुष्य की योजना में बाधक हुआ होऊं तो उस के साथ प्रधानतः विशेष सभ्य, शान्त और निष्कपट होऊंगा।

साधारण पक्ष से इस रीति को उदारता अथवा महानुभावता कहते, परन्तु वास्तव में यह उत्तम बुद्धि और व्यवहार नीति है। बहुधा कार्य साधन की रीति उस कार्य्य के प्रमाण में, और कभी २ विशेष उपयोगी भी होता है। किसी पर हम उपकार करें जिस से वह हमारा शत्रु बन जावे और उस को दुःख पहुंचावें जिस से मित्र हो जावे, तो ऐसा होने का आधार उस उपकार या अपकार करने की रीति पर ही है। सारांश कि धार्मिक और नीति युक्त कर्तव्य से इतर मनुष्य की सम्पूर्णता का संक्षेप तथापि पूर्ण वर्णन "मन की दृढ़ता के साथ नम्रता का आचरण हो" है।

लोक व्यवहार सम्बन्धी सदाचार।

पुरुष का लोक व्यवहार सम्बन्धी आचार उत्तम होना चाहिये, इतना ही नहीं किन्तु (रोम के) ज्युलिअस सीज़र की पत्नी के तुल्य संशयरहित होना चाहिये। उस पर ज़रा सा दाग़ या धब्बा लगने से सारा नाश हो जाता और इस से बढ कर प्रतिष्ठा घटाने और तुच्छ बनानेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं, क्योंकि इस से तिरस्कार और धिक्कार उत्पन्न होकर साथ में बंध जाता है। तथापि संसार में कितने एक ऐसे दुराचारी होते हैं जो सदासद नीति के विचारों की बुराई व भलाई का नाश करके ऐसा धारते कि ऐसे विचार केवल स्थानिक है और उन का आधार भिन्न २ देशों की रूढि और रिवाज पर है। इतना ही नहीं किन्तु बन सके तो इस से बढ कर अवश्य नीच मनुष्य भी मौजूद है जो अपनी आस्तिकता के प्रतिकूल दुष्ट और अनर्थकारक विचारों का उपदेश और प्रस्तार करने का होसा करते है। ऐसे आदमियों की सङ्गति से

जहां तक हो सके दूर रहो। उन के साथ बात करने से बदनामी होती और कलङ्क लगता है। परन्तु अकस्मात् कभी ऐसे मनुष्यों में आ फंसो तो तुम ऐसे निन्द्य विचारों से प्रसन्न हुए ऐसी सभ्यता, खुशी और उन के आनन्द में उत्साह के साथ अपनी प्रसन्नता जताने की बड़ी सावधानी रखो। गम्भीर विषयों पर वहां सम्वादनुवादानुवादन करो, परन्तु उन को " मेरी जाग में आप केवल हंसी करते हैं, आप के लिये मेरा अभिप्राय आप की इच्छा से बढ़ कर उत्तम है, और जिन विचारों का आप बोध कराते हैं उन पर आप का अमल नहीं यह मुझ को निश्चय है" आदि बातें कह कर सन्तुष्ट करो और अन्तर में उन को पहचान कर फिर सदा उन से दूर रहो। पुरुष के लोक व्यवहार सम्बन्धी सद्वर्त्तन जैसी दूसरी कोई नाजुक वस्तु नहीं है और इस को शुद्ध रखने में जितना लाभ है उतना किसी अन्य में नहीं। यदि किसी मनुष्य पर अन्याय, द्रोह, विश्वासघात या झूठ आदि का सन्देह हो जावे तो संसार के सारे पक्ष और विद्या उस के लिये आदर, मित्रता और प्रतिष्ठा कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अतएव मैं चाहता हूं कि तुम लोक व्यवहार सम्बन्धी सद्वर्त्तन को प्राण के तुल्य अति प्रिय रख कर सदा अपने कृत्य और वाणी की इतनी सावधानी रखो कि उन पर ज़रा सा भी दाग़ न लगने पावे। सर्व प्रसङ्गों पर ऐसा प्रगट करो कि तुम खाली शेखी बघारने वाले नहीं किन्तु सद्गुण के सच्चे मित्र हो। कर्नल् चार्टिस् भी, जो इस संसार में नामी दुष्टात्मा था और जिस ने हर प्रकार के पाप कर्मों से बहुत सा धन सञ्चय किया था, बुरी चालचलन की हानियों का ज्ञान होने पर उस को एक बार यह कहते हुए सुना कि सद्गुण के लिये यदिच मैं एक कौड़ी भी न देऊं तथापि सदाचार के लिये लाख रुपये देने को तैय्यार हूं, क्योंकि उस से मुझ को दूसरे दस लाख मिल जावेंगे। तो क्या यह सम्भव

है कि जिस वस्तु को एक चतुर शठ ऐसे मंहगे मोल पर खरीदे उस को प्रमाणिक मनुष्य खो देगा ?

उपर्युक्त दुर्गुणों में का एक दुर्गुण "झूठ" है, जो अन्य दुर्गुणों की अपेक्षा कलङ्क और हानि के साथ दृढ़तर जुड़ा हुआ है। इस में सुशिक्षित नियम पर चलने वाले मनुष्य भी कभी २ युक्ति, होशियारी और स्वरक्षण के भूल भरे हुए विचारों से फंस जाते हैं। इस के लिये मैं ने अपने विचार पहले सविस्तर वर्णन कर दिये हैं। अब अन्त में इतनाही कथन है कि अपने लोकव्यवहार सम्बन्धी आचार की पवित्रता के हेतु अतिशय सावधान रहो, उन को सदा निर्दोष निष्कलङ्क और पवित्र रखने से वे अशङ्कित रहेंगे। जहां कोई निर्बल स्थान नहीं वहां अपवाद और निन्दा का आक्रमण नहीं हो सकता; वे उन्नति कराते परन्तु बात को उत्पन्न नहीं करते हैं।

साधारण विषय पर टीका।

साधारण विषय पर न तो टीका करो, न उस पर विश्वास करो और न उसे भला जानो। ऐसी टीका करना बुद्धिहीन और फक्कड़ मनुष्यों का साधारण विषय है। परन्तु जो लोग वास्तव में बुद्धि के घर हैं वे इस का तिरस्कार करते और भविष्य बुद्धिमान ऐसे विषय में कुछ अविनय युक्त कथन करे तो उस से प्रसन्न होने को भी वे बुरा समझते हैं।

धर्म

धर्म उन का (भविष्य बुद्धिमानों का) एक प्रिय विषय है। " धर्म एक धर्म का पथ है और धर्म गुरुओं ने अपने लाभ और सत्ता जमाने को एक तोल रच कर चला दिया है" ऐसे अयुक्त और खोटे सिद्धान्तों पर से वे धर्मगुरुओं की हलकी, निरस मसखरी और अपमान करते हैं। उन लोगों की निगाह में तो प्रत्येक

पंथ के गुरु प्रगट या गुप्त रीति से नास्तिक, मदवे और व्यभिचारी ही होते, परन्तु मेरे विचार में धर्मगुरु भी ठीक दूसरे लोगों के समान ही हैं, भेष धारण कर लेने से वे न तो अधिक बुरे और न अच्छे हो सकते है। अन्य लोगों से जो उन में अन्तर है तो केवल धर्म, नीति या उन के न्यूनाधिक विवेक सुशिक्षा और जीवन की रीति भांति का है।

राज्यदर्बार और झोपड़े।

राज्यदर्बार झूठ और ठगाई का घर है। यह भी एक चवाव और साधारण टीका है, जो अन्य टीका की नाईं झूठी है। क्योंकि झूठ और ठगाई निःसन्देह राज्यदर्बार में होती, परन्तु वह कहां नहीं होती है। राज्यदर्बार के तुल्य झोपड़ों में भी है, अन्तर केवल इतना ही है कि झोपड़ों वाली रीति अधिक बुरी है। दो दर्बारी मनुष्य जैसे एक दूसरे के स्थानापन्न राजा के माननीय होने का यत्न करते वैसे ही दो किसान बाजार में एक दूसरे से बढ़ने अथवा ज़मींदार की दूसरे पर से कृपा घटा कर अपनी ओर बढ़ाने की बहुत सी युक्तियां रचते हैं। किसानों की निष्कपटता और राज्य-दर्बार के कपट विषय में कविजन मनमाना लिखो और मूर्ख उस पर चाहे विश्वास कर लो, तथापि इतना तो निस्सन्देह सत्य है कि गड़ेरिया और राज्यमन्त्री दोनों मनुष्य हैं; उन के स्वभाव और मनोविकार समान हैं अन्तर केवल रीति में ही है।

ये और अन्य ऐसी ही साधारण टीका जुदी २ पूजा और पेशों पर (ये जितनी सच्ची उतनी ही झूठी भी है) करना उन लोगों का निर्बल आश्रय है जिन में जाती बुद्धि या निर्माणशक्ति नहीं होती, परन्तु औरों की उतरी हुई पोशाक पहन कर सभा में चम-त्कारिक बनने का प्रयत्न करते है। मैं ऐसे मनुष्यों को—जब वे आशा

रखते हैं कि उन की ठठोलपन की बातों पर मैं हंसूंगा—अत्यन्त गम्भीर मुख रह कर, मानो उन्हों ने बात पूरी की हो न हो और रमूज की बात अब आने को हो इस प्रकार "ठीक, फिर क्या ?" आदि शब्द कह कर, सदा निराश करता जिस से वे निष्फल होते हैं; क्योंकि उन में प्रत्युक्ति तो होती नहीं, केवल एक ही प्रकार की मसखरी पर दिवस बिताते हैं। बुद्धिमान मनुष्य ऐसे मार्ग पर नहीं चलते किन्तु उस को अत्यन्त धिक्कारते हैं। उपयोगी और चमत्कारिक बातचीत के लिये वे उचित विषय ढूंढ निकालते और निन्दा या साधारण टीका न करते हुए वे तुरन्त उत्तर देने वाले और मन्द बुद्धि न होते गम्भीर हो सकते हैं।

वक्तृत्व

उत्तम भाषण करने की कला अर्थात् वक्तृत्व जीवन की प्रत्येक स्थिति में उपयोगी और बहुधा अति आवश्यक है। वक्तृत्व के बिना मनुष्य राज्यसभा, आचार्य्यपदवी और वकीलमण्डल में प्रख्यात नहीं हो सकता; साधारण बातचीत मे भी जिस को सरल और अभ्यासजनित वाक्यपटुता होती और जो यथार्थ और अन्दाज़ के साथ बोलता है वह अशुद्ध और कुढंग बोलने वाले मनुष्यों पर सदा विजयी रहता है। वक्तृत्व का अभिप्राय समझाना अर्थात् श्रोता के चित्त में बात का उतारना है और समझाने में अति असरकारक कार्य्य प्रसन्न करने का है अतएव श्रोता जनों का लक्ष अपनी ओर खिंचे इस रीति से उन को प्रसन्न करना भाषणकर्त्ता के लिये अति लाभकारक है जो वक्तृत्व की सहायता के बिना नहीं बन सकता है।

यह तो निश्चित है कि प्रत्येक मनुष्य अभ्यास और श्रम से साधारण उत्तम वक्ता हो सकता है। वाक्चातुर्य्यता का आधार

अवलोकन और अभ्यास पर है। प्रत्येक मनुष्य के अधिकार में है कि बुरे शब्दों की जगह अच्छे शब्द और वाक्यों का प्रयोग करे, अयथार्थ नहीं किन्तु यथार्थ बोले। कठिन और समझ में न आवे ऐसा बोलने के एवज़ स्पष्ट और शुद्ध भाषण करे, और हावभाव में बेडौल न बन कर लावण्यता रखे। सारांश कि श्रम और प्रयोग से प्रतिकूल होने के बदले अनुकूल वक्ता होना हर एक के हाथ में है और जिस ख़ास लक्षण में मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ है उसी लक्षण में बुद्धिमानों को अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठतर होने के लिये श्रम करना योग्य है।

डिमोस्थीनस (यूनान का प्रसिद्ध वक्ता) को उत्तम भाषण करना इतना आवश्यक प्रतीत हुआ कि स्वाभाविक तोतला और निर्बल फेंफडे वाला होने पर भी उस ने लगातार परिश्रम से इस त्रुटि को हटा देने का निर्णय किया। मुख में छोटे कङ्कर रख कर प्रति दिन बहुत काल तक उच्च शब्द के साथ स्पष्ट बोलने का अभ्यास कर के अपना तोतलापन मिटाया और बहुत देर तक ज़ोर से स्पष्ट बोलने के अभ्यास से फेंफडों की निर्बलता दूर की। जो भाषण उस को एथेन्स की शोर मचाने वाली प्रजासभा में करना होता उस को तूफ़ान के समय में समुद्र के किनारे जा कर भरसक ऊंचे शब्द से कहता था। ऐसे असाधारण प्रयत्न और लक्ष के साथ उत्तम ग्रन्थों का निरन्तर अभ्यास करने से अपने देश और समय का, वा अन्य देशी वक्ताओं में भी वह सर्वशिरोमणि वक्ता हो गया।

मनुष्य चाहे जैसी भाषा में बोले परन्तु उस को अतिशय शुद्ध और व्याकरण के नियमानुसार बोलना उचित है और इतना ही नहीं कि हम अशुद्ध भाषा न बोलें किन्तु अग्राम्य भाषा बोलने का यत्न करना चाहिये। इस के लिये उत्तम ग्रन्थकारों के पुस्तक ध्यान देकर बांचना, व सुशिक्षित विवेकी लोगों की बोलचाल की रीति को लक्षपूर्वक जानना चाहिये। साधारण मनुष्य विशेष कर अशुद्ध

और ग्राम्य भाषा बोलता, क्षुद्र वाक्यों का उपयोग करता और उच्च पद वाला मनुष्य ऐसा नहीं करता है; साधारण मनुष्य एकवचन और बहुवचन को बहुधा मिला देते व योग्य काल का लिहाज़ शायद ही रखते हैं। इन सब दोषों को मिटाने के लिये हमें ध्यान के साथ बांचना, श्रेष्ठ ग्रन्थकारों को रीति और वाक्य पर ध्यान देना और कोई शब्द समझ में न आवे तो उस का यथार्थ अर्थ पूछे और जाने बिना उस को छोड कर आगे न चलदेना चाहिये।

ऐसा कहते हैं कि मनुष्य कवि तो जन्म से होता परन्तु वक्ता होना तो उसी के अधिकार में है क्योंकि कवि होने के लिये तो मन का प्रौढ़त्व और चञ्चलता कितनेक अंश में आवश्यक है परन्तु वक्ता होने को लक्ष, वाचन, और परिश्रम ही काफी है।

विद्या दम्भ।

हर एक श्रेष्ठता और सद्गुण के साथ उस से सम्बन्ध रखने वाले दुर्गुण और ऐब भी लगे रहते हैं और यदि श्रेष्ठता और सद्गुण ही अमुक हद्द को उल्लंघन करे तो वे ही दुर्गुण और ऐब हो जाते हैं। उदारता में से उडाऊपन, परिमित व्यय में से कृपणता, वीरता में से अविचार, सावधानी में से डरपोकपन और इसी प्रकार और भी जानो। अतएव मेरे विचार में सद्गुण का उचित रीति से उपयोग करने के लिये उस के विरुद्ध दुर्गुण को तज देने की अपेक्षा विचार की विशेष आवश्यकता है। दुर्गुण अपने वास्तविक रूप में ऐसा बुरा दीख पडता है कि प्रथम ही में उस से अतिशय अरुचि होती और यदि पहले ही वह किसी सद्गुण का आभास न धारण कर ले तो हम को कुमार्ग में फंसाना कठिन होवे; परन्तु सद्गुण स्वयम् इतना सुन्दर है कि प्रारम्भ ही से हम को आनन्द देता, जैसे २ हम उस को अधिक उत्तम रीति से धारण करते त्यों त्यों वह अधिक

मोह बढ़ाता और अन्य सुन्दर वस्तुओं के तुल्य इस की सीमा का भी विचार हम नहीं कर सकते हैं। यहां उत्तम क्षत्य की ओर प्रयत्न चलाने और सीमाङ्कित करने को विचार की अति आवश्यकता होती है। इसी प्रकार महा विद्वत्ता—यदि उस के साथ विचार-शक्ति न होवे तो—हम को बहुधा भूल, अभिमान और विद्या दम्भ में ले जा कर डाल देती है।

तुरन्त निश्चयपूर्वक अभिप्राय प्रगट मत करो।

कितने विद्वान् अपनी विद्या के गर्व से केवल निर्णय करने ही को बोलते और बिना अपील के अन्तिम फैसला कर देते हैं, जिस का परिणाम यह होता कि मनुष्य जाति अन्याय से दुखित और अपमान से अप्रसन्न हो कर साम्हना करती, और उस अन्याय से मुक्त होने को नियमानुसार राज्याधिकारी के पास वाद चलाती है। ज्यों ज्यों तुम विशेष ज्ञान सम्पादन करो त्यों त्यों विनयवन्त बनो, कारण कि तुम्हारे मिथ्या प्रशंसा चाहने वाले मन को सन्तुष्ट करने का सिद्ध मार्ग तुम्हारा विनय ही है। जहां निश्चय हो वहां भी कुछ संशय ही बतलाओ, अपना मत दर्शाओ परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं, और जो तुम चाहते हो कि मैं दूसरों को क़ायल कर दूं, तो तुम भी क़ायल होने के तैयार हो ऐसा प्रगट करो।

अर्वाचीन की अपेक्षा प्राचीन को बढ़ कर जानने का दर्शाव मत धारण करो।

कितने मनुष्य अपनी विद्वत्ता दिखलाने या बहुधा पाठशालाओं की शिक्षा को लिये हुए (जहां और कोई बात उन के क़ान में नहीं पडती) सदा ऐसी बातें किया करते हैं कि प्राचीन लोग साधारण मानव जाति से कुछ विशेष और अर्वाचीन कुछ उतरते

हुए हैं। ऐसे मनुष्यों के पास एक दो प्राचीन ग्रन्थ खीसे (जेब) में रखते, वे पुराने विचारों को उत्तम मान कर उन्हीं में तत्पर रहते, नये ग्रन्थ रद्दी समझ कर नहीं पढते और स्पष्ट रीति से ऐसा दर्शाते हैं कि गत सत्रह सौ वर्ष में किसी व्यवहार या शास्त्र में सुधार नहीं हुआ। मैं किसी प्रकार से यह इच्छा नहीं रखता कि तुम अपने प्राचीन ज्ञान को प्रगट मत करो, परन्तु विशेष कर मेरी यह इच्छा है कि उस ज्ञान के साथ अपना सुपरिचय होने का मिथ्याभिमान धारण न करो। अर्वाचीन के विषय में तिरस्काररहित और प्राचीन के विषय में अति भक्तिरहित बात कहो, केवल काल के आधार पर नहीं, किन्तु उन के गुण दोष देख कर अभिप्राय बांधो और यदि तुम्हारे खीसे में " ऐलज़ेविर " का प्राचीन पुस्तक है तो न तो उसे दिखलाओ और न उस के विषय में बोलो।

प्राचीन प्रमाण के आधार पर अनुमान मत बांधो।

कितने महान् पण्डित प्राचीन ग्रन्थकारों के किसी विषय को अपने प्रस्तुत विषय से मिला कर उन पर अपने प्रगट व गुप्त व्यवहार के लिये कुढंगेपन से नियम गढ लेते है, परन्तु इतना नहीं विचारते कि प्रथम तो, सृष्टि की उत्पत्ति से आज तक कोई दो बातें ऐसी नहीं हुई जो केवल एक दूसरे के समान हों; दूसरा किसी इतिहास लेखक ने किसी बात को पूर्ण रीति से वर्णन किया हो या जाना हो ऐसा प्रत्यक्ष नहीं होता; क्योंकि किसी वृत्त पर अनुमान करने के लिये उस को सारी हकीकत जानना चाहिये। अतएव प्राचीन कवि और इतिहास रचने वालों के प्रमाण पर ही नहीं किन्तु उस वृत्त ही से उस की सर्व अवस्था जान कर अनुमान करो और उसी के अनुसार वर्त्तो। यदि इच्छा हो तो समान भाषने

वाली बातों को विचार में लो, परन्तु केवल आश्रय के लिये न कि अनुकरण के लिये।

विद्वत्ता का आडम्बर दिखलाने से दूर रहो।

विद्वान् मनुष्यों का एक ऐसा भी वर्ग होता है कि जो यद्यपि इतने स्वमताग्रही या अभिमानी नहीं होते तथापि अति असभ्य होते हैं। ऐसे वाचाल और प्रख्यात विद्यादम्भी अपनी वार्त्ता को (स्त्रियों के साथ भी) ग्रीक और लेटिन ग्रन्थों में से वाक्य चुन कर शोभा बढ़ाते और यद्यपि उन को विद्या लेशमात्र भी नहीं तथापि प्राचीन रोमन और ग्रीक ग्रन्थकारों में से कितनों के नाम और उन के ग्रन्थों के कतिपय वाक्य रट कर उन को अयोग्य रीति और अप्रस्तुत प्रसङ्ग से विद्वान् कहलाने की आशा में सर्व मण्डलियों में कहा करते हैं। अतएव एक ओर तो विद्यादम्भी कहलाने और दूसरी ओर लोगों को अज्ञान प्रतीत होने के दोष से तुम को बचना हो तो विद्वत्ता का आडम्बर धारण मत करो।

जिस मण्डली में तुम बैठे हो उस की शुद्ध भाषा अन्यभाषा के साथ मिश्रित किये बिना बोलो, और जिन मनुष्यों की सङ्गति में हो उन से विशेष विद्वान् अथवा बुद्धिमान होना प्रकाश मत करो। अपनी विद्या को घड़ी के तुल्य खीसे में रखो और केवल यह बतलाने को कि हम भी घड़ी रखते हैं उसे बाहर निकाल कर न दिखलाओ। यदि कोई पूछे कि क्या बजा है ? तो कह दो, परन्तु घड़ी घड़ी में चौकीदार की नाईं बिना पूछे प्रगट मत करो।

शौक़ मौज।

कितने मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार न होते भी केवल नाम के वास्ते कई शौक़ करते हैं। वे अक्सर इतनी भूल करते कि व्यभिचार को शौक़ मानते, मन और तन को समान हानि पहुंचाने वाला मद्यपान तो उन का बड़ा शौक़ होता, और सहस्रों विपत्ति में डालने व दमड़ी बिना बजाने वाला और अपनी दशा

और वर्त्तन को निर्लज्ज बावले मनुष्य की सी कर देनेवाला "जूए" का खेल उन का प्रिय शौक़ होता है।

शौक़ रूपी चट्टान पर से बहुधा युवा पुरुष फिसल कर नाश हो जाते हैं। वे अपनी नौका को भर कर अकसर शौक़ की तलाश में निकलते, परन्तु न तो उस का मार्ग जानने के लिये उन के पास कोई कम्पास और न उस नौका को चलाने की उन में बुद्धि होती है; अतएव उन की यात्रा का फल सुख के स्थान में दुःख और लज्जा हो जाते हैं। प्रचलित अर्थ के अनुसार शौक़ीन मनुष्य वही कहलाता है जो पशु के तुल्य मद्य पान करे, अति दुष्ट व्यभिचारी दुराचारी और सौंह खाने वाला हो। हमें अपने शौक़ के वर्त्तमान आनन्द की उस से उत्पन्न होने वाले निश्चित परिणाम के साथ तुलना कर अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार, दोनों में से कौन सा उत्तम है, इस का निर्णय करना चाहिये।

खान पान का आनन्द लेवें परन्तु इन के अति सेवन से होने वाले अवश्य दुःखों को सदा दूर रखने चाहियें। दूसरे मनुष्यों को अपने कृत्यों के लिये रीति के साथ या मार्मिक मलामत किये बिना उन्हें अपनी इच्छानुसार करने हैं, परन्तु जिन लोगों को अपने शारीरिक और मानसिक बल की रक्षा का कुछ भी विचार नहीं उन का मन रखने के लिये हम अपने बल व शरीर का नाश कदापि न करें। अपने चित्त विनोद के लिये द्यूत क्रीडा करें परन्तु दुःखी होने को नहीं अर्थात् मित्रमण्डल में अपने चित्त की प्रसन्नता और रुचि का अनुसरण करने को अल्प दामों से खेलें (१)

---

(१) इस वाक्य में चेस्टरफ़ील्ड के पूर्व वाक्य से विरोध पड़ता हैं। वास्तव में ऐसा चित्तविनोद नाम मात्र के लिये भी बुराई ही में दाख़िल है, क्योंकि दुष्ट कर्म की ओर थोड़ा सा झुकाव रखने से भी दृढवृत्ति मनुष्य भी शनैः शनैः दुःखसागर में डूब ही जाते हैं। इस को सभ्यता का अङ्ग समझना कितनी असभ्यता है।

उत्तम सङ्गति के मनुष्य मद्य पी कर लडखडाने वालों को पसन्द नहीं करते और न उन्हें यह अच्छा लगता है कि कोई मनुष्य अपनी श्रद्धा के उपरान्त दाम हार कर ह्रास हो और दैव को कुवचन कहे, और न दुष्ट व्यसन और कुमार्ग से हीन दशा को प्राप्त हुए लम्पट को वे भला जानते हैं। जो लोग ऐसे होते या ऐसों की प्रशंसा करते वे सुसङ्गति के नहीं और कदापि हुए भी तो बड़ी अरुचि के साथ उन का उस सङ्गत में प्रवेश हुआ होगा। सच्चा शौकीन और सभ्य मनुष्य विवेक के साथ वर्त्तता है, न तो वह अल्प से अल्प भी दुर्गुण किसी से ग्रहण करता और न उन का डौल दिखलाता है और यदि भाग्यवस उस में कोई दुर्गुण आपडे तो विचार व चतुराई के साथ गुप्त रीति से उस को दूर करता है।

जितना ध्यान हम अपने विद्याभ्यास में देवें उतना ही अपने शौक़ के वास्ते भी देना उचित है। विद्याभ्यास में जो हम पढ़ें परस्पर विचार व अवलोकन करना और शौक़ करने में जो सुनें और देखें उस से सावधान रह कर उस पर ध्यान देना; और मूर्ख लोग जैसे कह देते हैं कि "वास्तव में हमारा ध्यान नहीं था, कारण कि अन्य विषय का विचार करते थे" इसी प्रकार हमारे सम्मुख कुछ कहा या किया जावे तो उस के सम्बन्ध में हम को भी ऐसा ही कहना पडे ऐसा प्रसङ्ग आने ही न देना चाहिये। वे क्यों अन्य विषय का विचार करते थे और ऐसा ही था तो वे वहां आये ही क्यो थे? हम जहां कहीं होवें (सर्व साधारण कहावत के अनुसार) वहां अपने कान और आंख को सदा पास रखने चाहियें। हरएक बात कही जावे उस को देखना अवश्य है। अवलोकन इस रीति से करना कि कोई जान न पावे, क्योंकि यदि जान गये तो लोग हम से चमकते रहेंगे।

सर्व प्रकार का द्यूत, आखेट और ऐसे ही दूसरे चित्तविनोद जिस में समझशक्ति और बुधि का लेश मात्र भी भाग नहीं क्षुद्र

विनोद हैं, और संकीर्ण मन वाले लोग जो न तो विचार करते और न करना चाहते उन को कालक्षेप करने का एक आश्रय है। बुद्धिमानों के व्यसन या तो उन के मन की उन्नति करते या बुद्धि को उत्तेजन देते हैं।

उच्च और तुच्छ कलाओं के तुल्य उच्च और तुच्छ शौक भी होते हैं। मद्यपान कर के उन्मत्त होना, बिना विचारे पेट भर लेना, बग्गियां हांकना, जंगली खेल जैसे कि लोमड़ी का शिकार घुड़ दौड़ आदि ये दरज़ी और मोची के प्रमाणिक और परिश्रमी कर्म से भी उतर कर हैं।

जितने विशेष हम काम में लगे रहैं उतना ही अधिक आनन्द विनोद से होता है। जैसे शारीरिक व्यायाम भूख को बढ़ाता वैसे ही प्रभात में किया हुआ मानसिक श्रम भी संध्या के चित्तविनोद रूपी क्षुधा को तीव्र करता है। मूर्ख अथवा आलसी मनुष्य ऐसा समझते हैं कि काम और आराम एक दूसरे के शत्रु हैं, परन्तु ऐसा नहीं, वे एक दूसरे के सहायक है। पहले काम किये बिना रुचि न रहने से आराम का सच्चा स्वाद हम को नहीं प्राप्त हो सकता। चित्तविनोद न करने वाले मनुष्यों में से थोड़े ही ऐसे निकलेंगे जो काम भली भांति करते हों; परन्तु उस विनोद से मेरा अभिप्राय विचारवन्त प्राणी के उत्तम आनन्द से है न कि सूअर के तुल्य जंगली क्रीड़ा से।

पक्षपात।

जो पुस्तक तुम बांचो उस को, अथवा अपने सङ्गियों के विचारों को उन की योग्यता अयोग्यता की परीक्षा किये बिना ग्रहण मत करो। क्योंकि ऐसा करोगे तो विचारशक्ति की पथदर्शकता के पलटे पक्षपात से घसीटे जाओगे और सत्य की खोज करने के पलटे जानने में न आवे ऐसी भूलों की वृद्धि करोगे।

ठीक और पूर्ण विचार बांधने के लिये अपनी विचारशक्ति का उपयोग कर के उसे सिद्ध करो, हर एक वस्तु का चिन्तवन व परीक्षा करो और उन का पृथक्करण करो। ऐसा न होवे कि युक्ति और प्रमाणरहित बातें तुम्हारी ज्ञानशक्ति को ठग लेवें, तुम्हारे कार्यों को कुमार्ग में ले जावे और तुम्हारी बातचीत को प्रेरक हो जावे। "अमुक कार्य्य करना था" ऐसी इच्छा अवसर चूक जाने पीछे न रख कर उस कार्य्य के करने में प्रथम ही से तत्पर रहो। समय समय पर अपनी विचारशक्ति से सलाह लो। मैं यह नहीं कहता कि विचारशक्ति कभी भूल कराती ही नहीं, क्योंकि मनुष्य की विचारशक्ति ऐसी पूर्ण नहीं कि भूल न करे; परन्तु अन्य बातों की अपेक्षा इन की प्रेरणा से काम करोगे तो भूल थोड़ी होगी। पुस्तक और बातचीत विचारशक्ति के सहायक हैं, परन्तु उन्हें आंख मूंद कर निस्संशयपन से ग्रहण मत कर लो, "विचार करो"। इस ईश्वर निर्दिशित उत्तम नियम से दोनों की परीक्षा कर लो। अन्य २ तकलीफों की नाईं विचार करने की तकलीफ से मुंह मत मोड़ो, जैसा कि बहुत से लोग करते हैं। साधारण पंक्ति के मनुष्य बहुत कम विचार करते हैं। उन के विचार बहुधा औरों से ग्रहण किये हुए होते और मेरे नजदीक यह ठीक है, क्योंकि अपने निज के अनगढ़ और अशिक्षित विचारों की अपेक्षा ऐसे साधारण ग्रहण किये हुए विचारों से सुखशान्ति अधिक रहती है। स्थानिक भूल भरे हुए विचार सर्वसाधारण मनुष्यों पर प्रधानता भोगते, परन्तु सुशिक्षित चतुर और विचारवान पुरुषों को नहीं ठग सकते हैं। इस के साथ ही यद्यपि इतने स्पष्ट असङ्गत नहीं तथापि समान रीति से झूठे विचार भी हैं, जिन को उच्च श्रेणी की उन्नति की हुई ज्ञानशक्ति वाले मनुष्य भी केवल सत्य के शोधन में आवश्यक श्रम न करने, परीक्षा करने में उचित ध्यान न देने और निर्णय करने के लिये गम्भीर दृष्टि न रखने से धारण कर लेते हैं। मैं चाहता हूं कि तुम अपनी विचार-

शक्ति का उपयोग मनुष्यकर्त्तव्य के अनुसार कर के लक्ष्य के साथ ऐसे (भूल भरे हुए) पक्षपात में बंधने से सावधान रहोगे।

मत या धर्म।

अभिप्राय के सम्बन्ध में चाहे जितनी बडी भूल चूक मनुष्य करे, यदि वे शुद्ध अन्तःकरण से है तो दया करने के योग्य है, न कि ताडना और हंसी के योग्य। विचारशक्ति का अन्धपन भी आंखों के अंधापे के तुल्य ही दया का पात्र है और दोनों अवस्था में यदि कोई मनुष्य अपने मार्ग से भटक जावे तो वह दण्ड या हास्य का पात्र नहीं। परोपकार-बुद्धि हमें यही आज्ञा देती है कि ऐसे मनुष्य को प्रमाण सहित वाद कर के या समझा के ठिकाने लाओ, परन्तु उस की दुर्दशा पर उस को दण्ड देने या हंसी करने को वही बुद्धि मना करती है। प्रत्येक मनुष्य सत्य की खोज में है, परन्तु परमात्मा ही जानता है कि किस ने सत्य को प्राप्त किया। मनुष्यों को अपने भिन्न २ अभिप्रायों के लिये सताना और उन का हास्य करना अन्याय और अयुक्त है, क्योंकि अपनी विचारशक्ति के क़ायल हो जाने पर उन विचारों के अनुयायी होने से नहीं रुक सकते है।

जो झूठ बोलता और झूठ करता वह पापी है, परन्तु जो प्रामाणिकता और शुद्ध अन्तःकरण से झूठ को (सच्च) मानता है वह पापी नहीं।

इस संसार में सब लोग एक ही पुरुष की उपासना करते है. जो वस्तु मात्र का स्रष्टा अनादि अनन्त परमेश्वर है। उपासना की पृथक् २ रीतियां हंसी के योग्य नहीं। प्रत्येक मत वाला अपने ही पन्थ को श्रेष्ठ जानता है, परन्तु श्रेष्ठ कौन सा पन्थ है ऐसा निर्णय करने वाला अचूक न्यायाधीश कोई इस जगत् मे मेरी जान में नहीं है।

काल का उपयोग।

समय के उपयोग और मूल्य पर हम कितना अल्प विचार करते है। "विचार करना चाहिये" ऐसा हर एक मनुष्य कहता, परन्तु करते बहुत कम है। प्रत्येक मूर्ख भी, जो अपना सारा समय व्यर्थ गमाता है, प्राय: ऐसे प्रगट साधारण वाक्य काल के वेग और उस की बहुमूल्यता सिद्ध करने के अर्थ बोलता है। सर्व पुरुषखण्ड में छाया यन्त्रों पर इसी अभिप्राय के युक्ति युक्त लेख लिखे रहते हैं। अतएव समय का उत्तम प्रकार से उपयोग करना कितना आवश्यक है और गया हुआ काल फिर कभी हाथ नहीं आता ऐसा देखे या सुने बिना कोई भी मनुष्य अपना समय नहीं गमाता है। युवा पुरुषों की यह मान लेने की प्रकृति हो जाती कि "हमे तो इतना समय है कि चाहे जितना व्यर्थ खोवें तथापि बहुत सा शेष रह जायगा"। जैसे कि बहुत सा धन होने से कई मनुष्य मूर्खता के साथ उस को उडा कर अन्त में दुर्दशा को प्राप्त होते हैं, परन्तु जहां उत्तम बुद्धि और विचारशक्ति इन सर्व शिक्षाओं को ठगने के बदले सूचना करने को न हो वहां ये शिक्षा निरुपयोगी है।

आलस्य।

समय बहुमूल्य व जिन्दगी थोडी है इस लिये एक पल भी व्यर्थ न खोना चाहिये। बुद्धिमान मनुष्य जानते है कि समय का उत्तम उपयोग किस प्रकार से होता, और वे ही आनन्द और लाभ उठाने में अपना सर्व काल बिताते है। वे कभी आलस्य नहीं करते, परन्तु लगातार चित्तविनोद व अभ्यास में लगे रहते है। यह जगत्प्रसिद्ध कहावत है कि "आलस्य दुर्गुण की जननी है"। परन्तु यह तो निश्चित है कि वह मूर्खों का दाय विभाग है। आलसी से बढ कर धिक्कारने योग्य कोई नहीं। चतुर और सद्गुणी, रोम देश

का केटो सेन्सर कहा करता था कि अपने जीवन भर में तीन कार्यों का मुझे पश्चात्ताप है। प्रथम, अपनी स्त्री को मैं ने एक गुप्त भेद कह दिया, दूसरा मैं एक वार जल के मार्ग से गया, जब कि स्थल से भी पार जा सकता था, और तीसरा मैं ने एक दिन कुछ कार्य्य किये बिना व्यर्थ खो दिया।

वांचना।

इंगलैण्ड के बादशाह तीसरे विलियम् ऐन और जौर्ज प्रथम के समय में राज्यकोष के प्रसिद्ध मन्त्री वृद्ध मिष्टर लोनेस् का यह अति ही युक्त और बुद्धिमत्ता का कथन था कि "पैसे पैसे की सम्भाल रखोगे तो रुपया अपनी सम्भाल आप कर लेगा।" अतएव मैं तुम को पल पल की सम्भाल रखने को कहता हूं, क्योंकि फिर घण्टे तो अपनी सम्भाल स्वयम् कर लेंगे। दिन भर कुछ कार्य्य करते रहो और आधा या पाव घण्टा भी व्यर्थ मत गमाओ, क्योंकि वर्ष के अन्त में उन की संख्या बहुत बढ़ जावेगी ; जैसे कि दिन में चित्तविनोद और अभ्यास के मध्य का थोडा २ समय भी बहुत सा हो जाता है। उस समय में आलसी हो कर मुंह फाडे हुए बैठे रहने की अपेक्षा कोई उत्तम पुस्तक लो और जब तक वह सम्पूर्ण न हो जावे उस का पढना जारी रखो। एक ही काल में एक से अधिक विषय का बोझ अपने चित्त पर मत डालो। पुस्तक को पढते समय उसे सरसरी निगाह से न देख जाओ, परन्तु हर एक वाक्य को कम से कम दो वार वांच कर पहले को ठीक २ समझ लेने के बिना दूसरा मत पढो और जब तक तुम उस के सम्पूर्ण विषय का ज्ञान न प्राप्त कर लो तब तक उस पुस्तक को दूर मत रख दो। क्योंकि यदि ऐसा करोगे तो पुस्तक के सम्पूर्ण वांचने पर भी उस का आशय एक सप्ताह के लिये भी तुम्हारी याद में न रहेगा। कभी २ आधे या पाव घण्टे नवीन शोध या हंसी मजाख की पुस्तक

भी पढो ; परन्तु प्राचीन या अर्वाचीन निर्जीव ग्रन्थकारों की पुस्तक पढने में कालक्षेप कभी मत करो। विचारवान मनुष्य के तुल्य मनरञ्जन में समय बिताना आलस्य नहीं है और न वह समय व्यर्थ गमाया हुआ कहलाता है। परन्तु इस के विरुद्ध मनरञ्जन में थोडा समय बिताया जावे वह उपयुक्त होता है।

व्यवहार का कार्य्य करना।

जो कार्य्य करना हो उस को तुम जब तक कर सको पहले ही अवसर मे करना चाहिये। जहां तक बने कार्य्य को अधूरा कभी मत छोडो, परन्तु विना विक्षेप के सम्पूर्ण कर लो। कार्य्य को न तो अलसा कर करना और न उसे तुच्छ गिनना चाहिये। ऐसा मत कहो जैसा कि फेलिक्स ने पौलुस को कहा था कि "अधिक अनुकूल अवसर पर मै तुम से बोलूंगा"। कार्य्य के लिये अति अनुकूल समय प्रथम ही अवसर है। बुद्धिमान मनुष्यों को अभ्यास और कार्य्य स्वयम् अपना समय प्रगट कर देते हैं। मनोरञ्जन और आनन्द की अयुक्त रीतियों और खराब चुनावटों में बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट किया जाता है।

नियम पद्धति।

कार्य्य का मुख्य आधार निकास है और इस के वास्ते नियम से बढ कर आवश्यक कोई दूसरी बात नहीं। हरएक बात के वास्ते नियम रक्खो और किसी अचिन्तनीय घटना के अतिरिक्त अखण्ड नियमानुसार काम करो। हफ्ते में किसी दिन का अमुक घण्टा अपना हिसाब साफ करने का नियत कर के उसे ठीक अनुक्रम से रक्खो। ऐसा करने से हिसाब में थोडा काल लगेगा और तुम अधिक ठगाओगे नहीं। जो चिट्ठिया और कागज तुम रखते हो उन को पृथक २ वर्ग से जमा कर सूचीपत्र बना लो कि जब कभी तुम को किसी कागज़ की आवश्यकता हो तो तुरन्त मिल जावे।

अपने बांचने का भी कुछ नियम बांध कर प्रभात के समय अमुक घण्टा उस के लिये निकालो। बहुत से मनुष्य भिन्न २ ग्रन्थकारो के पृथक् २ विषय के लेख थोड़े २ पढते है। इस प्रकार असम्बन्धित और अनियमित रीति से न वाच कर सम्बन्ध व अनुक्रम से बांचना चाहिये। विद्या का दम्भ वतलाने को कोई वाक्य सुन कर बोलने को नहीं, किन्तु अपनी धारणाशक्ति की सुगमता के निमित्त जो कुछ तुम वांचो उस में से नोट करने को उपयोगी पुस्तक पास रक्खो। नकशे और वंशावली की पुस्तक पास रखे और निरन्तर उन्हें देखे बिना इतिहास कभो मत पढो, क्योंकि उन का ज्ञान न होने से इतिहास केवल भिन्न २ घटनाओं का एक संग्रह मात्र है। बहुत से जवान मनुष्यों की नाई तुम भी कहोगे कि वे सर्व पद्धति और नियम तो महा कष्टदायक है, जो केवल आलसियों के योग्य और जवानी के उत्तम उमङ्ग व उत्साह पर एक अप्रिय अङ्कुश है। मैं इस बात को अस्वीकार कर के इस के विरुद्ध यह प्रतिपादन करता हूं कि यह नियम तुम्हारे आनन्द को विशेष समय और विशेष रुचि देगा और जब कि तुम ने एक मास पर्य्यन्त इस का पालन कर लिया, फिर नियमानुसार काम करना कष्टदायक होने के पलटे नियम न रखना बुरा मालूम देगा। जैसे व्यायाम से भोजन की रुचि बढती है वैसे ही काम से आनन्द भोगने को भूख प्रदीप्त हो कर रुचि और उत्साह बढाता है। कार्य्य बिना नियम के कभी हो नहीं सकता।

नाच तमाशे अथवा सभा के आनन्द का असर निकम्मे मनुष्य की अपेक्षा काम करने वाले पर अच्छा होवेगा। इतना ही नहीं, किन्तु मै हिम्मत के साथ यह भी कह सकता हूं कि स्वरूपवती स्त्री के सौन्दर्य्य की छवि आलसी की अपेक्षा अभ्यासी व परिश्रमी को अधिक दिखलाई देगी। क्योंकि आलसी के सर्व चरित्र में शून्यता रहती और जैसे कि वह हर एक अन्य बात में अशक्त होता वैसे ही अपने आनन्द में भी अरसिक ही रहता है। मै आशा रखता हू

कि तुम अपने आनंद को कमा कर उस के स्वाद का अनुभव करोगी, क्योंकि मेरी जान में बहुत से मनुष्य अपने को शौकीन मानते, परन्तु वास्तव में उन को कुछ भी शौक नहीं होता है। बिना विचारे दूसरे लोगों के शौक़ वे अपनी रुचि के विरुद्ध ग्रहण कर लेते और उन को अच्छे जान कर हद्द से ज़ियादा भोगते हैं। परन्तु जैसे दूसरों के वस्त्र उन को नहीं फबते वैसे ही वे शौक़ उन को शोभा नहीं देते हैं। अपने ही शौक़ के सिवाय अन्य का शौक़ धारण न करने से तुम उस में दीप्ति को प्राप्त होगी।

बहुत से मनुष्य अभ्यास अथवा कार्य्य से खाली होने के समय ऐसा जानते कि हम आनन्द उड़ाते हैं, परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि निकम्मा बैठा रहना और सोना समान है। उन को अलसाने की प्रकृति पड़ जाती और वे उन्हीं स्थानों में जाते हैं जहां कुछ अङ्कुश नहीं और ध्यान देने की बात न होती हो। इस तरह समय को आलस्य में खोने से सावधान रहो और सदा वैसे स्थान में जाओ जो प्रफुल्लित आनन्दकारी शौक़ या अपनी उन्नति का स्थल होवे।

कदापि किसी काल में किसी उपयोगी कार्य्य के लिये दो तीन घण्टे घटते हों तो उतने कम सोओ। प्रति दिन छः सात घण्टे की निद्रा मनुष्य के लिये बस है। इस से अधिक केवल आलस्य और ऊंघना है, जो हानिकारक और जड़ बनाता है। दैवयोग से कभी कार्य्यवश या रागरङ्ग में प्रभात के चार पांच बजे तक जागना पड़े तथापि नियत काल पर जाग उठो। क्योंकि इस से प्रभात का बहुमूल्य समय निरर्थक न जायगा और अपूर्ण निद्रा करने से दूसरी रात को जल्दी सो जाओगी।

निर्जीव विषयों पर ध्यान से सावधान रहो।

मुख्य कर निर्जीव विषयो पर ध्यान न देने को सम्भाल रक्खो। तुच्छ मन सदा काम में लगा रहता, परन्तु निरर्थक। वह क्षुद्र बातों को बड़ी कर मानता और जो समय और ध्यान बड़े विषयों पर देना चाहिये उस को ओछी बातो में खो देता है। खिलौने, तौतरी, घोंघे, कीड़े आदि इन के सदा गम्भीर शोच के विषय है। वे अपनी मण्डली के पुरुषो की चालचलन पर नहीं, परन्तु उन की पोशाक पर, खेल की खूबी पर नहीं, किन्तु उस की सजावट पर और किसी दर्बार की राजनीति पर नहीं, परन्तु राज्यरीति पर विशेष ध्यान देते हैं। समय का ऐसा उपयोग करना केवल उस का नाश करना है।

इस विषय की समाप्ति में यह कहना है कि आलस्य, ढीला पन और तोपन जवान आदमी को हानिकारक और अनुचित है। आज से ४० वर्ष पीछे चाहो तो तुम इन का आश्रय लेना। हर प्रकार से थोड़े समय के लिये भी जिस नगर में तुम हो वहा के अति प्रख्यात और अमीर मनुष्यों की सङ्गति उस के पद या विद्वत्ता के हेतु करने का निर्णय करो, चाहे वह कितनी ही बातो में तुम्हारे प्रतिकूल भी पड़े। क्योंकि ऐसा करने से फिर जहां कहीं तुम जाओगे वहां की श्रेष्ठ मण्डली में प्रवेश करने के लिये यह एक प्रकार का विश्वासपत्र होगा।

काल की सच्ची क़दर को जानो और उस के हर एक पल को शीघ्रता के साथ पकड़ कर उस का उपभोग करो। आलस्य, ढीलापन और दीर्घ सूत्रता रख कर आज का काम कल पर कभी मत छोड़ो। अभागी और प्रसिद्ध वज़ीफ़ेदार डीविट (हौलेण्ड के प्रजा सत्ता राज्य का मन्त्री) का यही नियम था, जिस पर बराबर अमल करने से उस को राज्यकाज करने के अतिरिक्त इतना

समय मिलता कि जैसे कुछ अन्य काम या विचार न करना हो उस प्रकार संध्या का समय दावतों और सभाओं में बिताता था।

घमण्ड।

घमण्ड करने से सदा बचे रहो, जो निरनुभवी जवान मनुष्यों की एक साधारण कुटेव है, और मुख्यत: ऐसे घमण्ड से जो तुम को फक्कर का पद दिलावे। यह पदवी यदि एक बार मिल गई तो धर्मगुरु के पद से भी अधिक अक्षय है। आत्माभिमान से अपना ही कार्य्य कितने प्रकार से बिगड़ता है इस की कल्पना नहीं हो सकती। एक मनुष्य हर एक विषय पर वितर्ह फैसला दे देता, अपनी अज्ञानता को बहुतों पर प्रगट करता और शेष विषयों के लिये नाना प्रकार का खोटा अभिमान रखता है। इत्यादि। ऐसा मनुष्य जिस प्रतिष्ठा को प्राप्त करना चाहता है मानो उस का नाश करता है। कितने मनुष्य अपने से कुछ भी सम्बन्ध रखनेवाले कई क्षुद्र विषयों से अपना घमण्ड प्रगट करते हैं—जैसे कि प्रख्यात गुणी और महा प्रतिष्ठित मनुष्यों के वंश में होना या उन से सम्बन्ध रखना या मैत्री होना आदि। वे बारम्बार कहते हैं कि हमारे दादे ऐसे प्रतापी और काके ऐसे नामी थे और अमुक बडा आदमी हमारा बडा मित्र है (जिस को वे पहचानते भी न हों)। यदि उन की इच्छानुसार हम इस बात को स्वीकार भी करें तो क्या हो जायगा? क्या ऐसी आकस्मिक बातों से उन की प्रतिष्ठा अधिक होगी? कदापि नहीं। इस से तो उल्टा यह सिद्ध होगा कि वे ऐसे आकस्मिक मान की इच्छा रखते अतएव उन में स्वाभाविक मान नहीं है। धनाढ्य पुरुष कभी किसी से उधार नहीं लेता। इस सिद्धान्त को अटल रीति से स्वीकार करो कि जिस आचरण में तुम प्रसिद्ध होना चाहो उस के दिखाव का ढोंग मत धारण करो। प्रशंसारूप मछली को पकड़ने का अचूक कांटा विनय है। जैसे

कि हाजिरजवाबी का डौल दिखलाने से वास्तविक होशियार मनुष्य भी फक्कड कहलाता, वैसे ही पराक्रम का डौल बतलानेवाला बीर पुरुष भी शेखी मारनेवाला गिना जाता है। विनय शब्द से मेरा अभिप्राय भीरुता और गंवारपन से भरी हुई लज्जा का नहीं है किन्तु इस के विरुद्ध अपने मन में सदा अटल और दृढ़ रह कर, कुछ भी हो, अपनी कदर को जानो और उसी नियम के अनुसार काम करो। परन्तु लोग यह न जान जावै कि तुम अपनी कदर को जानते हो, इस की सावधानी रखो। तुम्हारे पास क्या क्या गुण है सो दूसरे लोग ढूंढ निकालेंगे, क्योंकि मनुष्य सदा दूसरे की शोभा को घटा कर अपनी ही शोध की बडाई देते हैं।

सद्गुण।

यह विषय तुम्हारे और मनुष्य मात्र के ध्यान देने योग्य है। भला करना और सत्य बोलना यह सद्गुण है, अतएव इस के परिणाम मनुष्य जाति को और विशेष कर अपने को लाभकारक है। सद्गुण ही से हम को मनुष्य जाति पर दया आती और उन को दुःख से मुक्त करते है, इसी से ससार मे हम न्याय और उत्तम व्यवस्था की वृद्धि करते है। विशेष कर यह उन बातो में सहायता देता है जिन से मनुष्यों का हित होवे, और हम को अन्तरङ्ग सुख और सन्तोष प्राप्त कराता जो अन्य बातों से नहीं मिल सकता है। न इस को कोई हमारे पास से चुरा सकता है। अन्य २ लाभों का आधार जितना हमारे पर है उतना ही औरों पर भी है। द्रव्य, अधिकार और पद हमारे पास से दूसरे लोगों के अन्याय और अत्याचार से अथवा अनिवार्य घटना से छिन सकते है, परन्तु सद्गुण का आधार केवल अपने पर ही है, उसे कोई मनुष्य हमारे पास से नहीं ले सकता। रोग शरीर के सर्वसुख को नाश कर देता, परन्तु सद्गुण और उस से उत्पन्न हुए सन्तोष को वह हम

से जुदा नहीं कर सकता। सद्गुणी मनुष्य को जिन्दगी की सब विपत्तियों में भी अन्तरङ्ग सुख और सन्तोष बना रहता है. जिस से वह संसार के सर्वसुख प्राप्त होनेवाले दुर्गुणी मनुष्य से अधिक सुखी होता है। किसी मनुष्य ने झूठ अन्याय और अत्याचार से बड़ा अधिकार या द्रव्य सम्पादन किया हो तो वह उस का भोग नहीं कर सकता, क्योंकि उस का अन्तःकरण उस को दुःख देता और जिन साधनों से द्रव्य का सम्पादन किया है उन के लिये निरन्तर उस को धिक्कारता है। अन्तःकरण की शूल उस को सुख से सोने नहीं देती, वह अपने पापों के स्वप्न देखता और दिन में जब अकेला होता व विचारने का समय मिलता है तब बेचैन और उदास रहता है। क्योंकि वह जानता है कि मनुष्य जाति उस को धिक्कारेगी और काल पाकर अवश्य उसे दुःख पहुंचावेगी, इस से वह हर एक बात का भय रखता है। परन्तु सद्गुणी मनुष्य संसार में वह चाहे जितना दीन और दुःखी हो, तथापि उस का सद्गुण ही उस का पारितोषिक है, जो सर्व विपत्तियों में उस को धैर्य्य देवेगा। अपने अन्तःकरण की शान्ति से दिन रो आनन्दपूर्वक रह कर रात्रि को सुख से सोवेगा, अकेला भी आनन्द में रहेगा और अपने विचारों से उस को भय न होवेगा, संसार त्यागने उपरान्त एकान्त स्थिति में भी सद्गुण के बल से अपना मार्ग निकाल कर दीप्तिमान हो जावेगा और तुरन्त या काल पा कर उस का बदला अवश्य उस को मिलेगा।

लार्ड शाफ्टसबरी का कथन है कि जैसे कोई देखे या न देखे मैं अपने ही लिये स्वच्छ रहता हूं वैसे ही कोई जाने या न जाने मुझे अपने ही लिये सद्गुणी होना चाहिये॥

॥ समाप्त ॥